हंसा कहो पुरातन बात

डॉ. श्रीराम परिहार

Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

ललित निबंध के समर्थ रचनाकार डॉ. श्रीराम परिहार के निबंधों में सर्वोपरि है—मनुष्य की चेतना और मानव चिंतन। यह आर्षभाव मनुष्य के विकास हित कारुणिक भाव से आप्लावित है। बात चाहे गंगा की हो या नर्मदा-ताप्ति की, पर्वत शिखरों की हो या गहरी खाइयों की, सुजलाम्-सुफलाम् धरती की हो या स्वच्छ-मटमैले गगन की, बात कहीं से भी उठे और कहीं भी रुके, अंततोगत्वा वह मानवमुक्ति की राह खोजते और खोलते हुए दिखाई देती है। सबमें एक निरपेक्ष प्रकृतिभाव और प्राकृतिक सुख का निर्मल संविधान है। मटकी में सौंधे दूध सरीखा। झोपड़ी का मन लिखनेवाली प्रतिभा कहीं प्रकृति, कहीं प्रकृति की रंगीनियों को कलम-तूलिका से सजाती है, तो कहीं अश्रु-वेदी पर पंख फड़फड़ाते हुए मंत्रों को सुनाती है। डॉ. श्रीराम परिहार की प्रतिभा खंडित जीवनदृष्टि और खंडित जीवनबोध को नकारकर समग्र को स्वीकारती है।

डॉ. श्रीराम परिहार ने जीवन को जीवन की ही किताबों में देखा-परखा-समझा है। ग्रंथों के माध्यम से जीवन को समझनेवाले समझदारों में उनकी गिनती नहीं होती। यही वजह है कि बादलों के गाँव में उनका मन बिरम जाता है और बिजली के कथा-कुंजों में एक अनाम माधव-भाव लजाता है।

डॉ. श्रीराम परिहार का भाषा-विवेक उनके लेखन का बल-स्थान है। भाषा का अनुभूति जगत, उसका विस्तार और गहराई संग्रह के ललित निबंधों में देखी जा सकती है। भाषा का चिंतनपक्ष और संस्कारपक्ष दोनों मुखरित हैं। डॉ. परिहार के निबंधों की भाषा में ऐसे कितने ही शब्द हैं जो गाँव की ऊष्मा के कारण तबियत हरी कर देते हैं। एक ऐसी ऊष्मा, जो भजन की हो तो इकतारे-सी आत्मविलोपन भाव की छवि सजाती है और भोजन की हो तो तृप्ति के थाल परोसकर पर्व का उल्लास रच देती है। डॉ. परिहार की भाषा उल्लास और उजास की है।

डॉ. विश्वास पाटिल

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

બન્ધુવર શ્રી અવિનાશીલાલ
ને સાદર।

[illegible]
૧૯ નવમ્બર ૨૦૨૨.

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu
Acc No. 1664
Dated 19.12.2023

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हंसा कहो पुरातन बात

(ललित निबंध)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हंसा कहो पुरातन बात

(ललित निबंध)

डॉ. श्रीराम परिहार

ज्ञानलोक, दिल्ली

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ISBN : 978-93-84084-02-8

मूल्य : ₹ तीन सौ बीस (₹ 320)

प्रकाशक : ज्ञानलोक
27/109ए/3, मेन पांडव रोड
ज्वाला नगर, शाहदरा दिल्ली-110032

संस्करण : द्वितीय, 2014

सर्वाधिकार : सुरक्षित

अक्षरांकन एवं मुद्रण : रचना एंटरप्राइजिज, दिल्ली-32

HANSA KAHO PURATAN BAAT (Essays) *by* Dr. Shri Ram Parihar

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गीत-समीक्षा
के
रस-कलश
डॉ. सुरेश गौतम
को
विनत भाव से!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्राक्कथन

पाँखरी से पाषाण की तराश

ललित निबंध में 'ललित' शब्द भले ही अपने आरंभिक समय में विशेषण के रूप में जोड़ा गया हो पर आज यह निबंध के साथ मिलकर मात्र विशेषण नहीं रहा। 'ललित निबंध' अपने आप में एक विधा का व्यक्तित्वसूचक शब्द है, अर्थात आज यह संज्ञा बन चुका है। ललित निबंध, निबंध की शैली मात्र नहीं है, वह स्वतंत्र विधा बन चुका है। एक ऐसी विधा जो वटवृक्ष की शाखा की भाँति अपने मूल से जुड़ी होकर भी अपनी जड़ों और जमीन में स्वतंत्र अस्तित्व भी रखती है।

ललित निबंध अपने मूल में रस-सिक्त विधा है। भावात्मकता, संस्कृतिनिष्ठता, वैयक्तिकता, शास्त्रज्ञता, लोकनिष्ठा, चिंतनशीलता, बहुविज्ञता, सूक्तिपरकता और काव्यमयता एक श्रेष्ठ ललित निबंध के तत्व हो सकते हैं। ललित निबंध भारतीयता और भारतीय जीवन की मूल्यवत्ता की सार्थक एवं जीवंत अभिव्यक्ति है। यह अपनी सर्जनात्मकता में परंपरा और शाश्वत मूल्यवत्ता की समेट लिए हुए है। व्यापक संदर्भशीलता इसकी कुक्षि से जन्म लेती है। इस संदर्भशीलता के रेशे-रेशे भारतीय मिट्‌टी, पानी, ताप, हवा, दिशा, क्षितिज, व्योम, मनुष्य, पशु, पक्षी, ऋतु, पर्व, तीज-त्यौहार, व्रत-उत्सव से जुड़े होते हैं। यह काल की अतीत, वर्तमान और भविष्य की धारणाओं को स्पर्श करनेवाली विधा है, तो काल की चक्रीय स्थिति की अनादि और अनंत दार्शनिकता का अनुकरण भी करती है। यह स्थानीय बनकर ही अंतर्राष्ट्रीय बनने का उपक्रम खोजती है। जीवन की अनवरतता इसमें है। चिंतन के बहुप्रसंग इसमें हैं। मूल्यों के शाश्वत सोपान हैं। प्रकृति और जीवन सृष्टि के अंतर्संबंधों की गहरी मिठास है। और गहरी दृष्टि संपन्नता है।

निबंध के जनक मोनतैङ ने निबंध को आत्मप्रकाशन माना है। आत्मप्रकाशन वाला तत्व ललित निबंध में व्यक्तित्व के अंतर्गत समाहित है। अपनी शिल्पगत संरचना में ललित निबंध लेखक की आत्मप्रकाशन की प्रवृत्ति से गहरे संपृक्त है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

ललित निबंध अपने कलेवर में आत्मसिक्त विधा है। अंग्रेजी में पर्सनल ऐसे लिखने वाले चार्ल्स लैंब ने निबंधों में आत्मचेतना और आत्माभिव्यक्ति को समेकित किया। इसी से ललित निबंध में एक खास तरह का निजीपन और व्यक्तिव्यंजकता बार-बार झाँकती है। ललित निबंध परम्परा के विकासमान प्रतिमानों के साथ अपने शिल्प और आत्मिक संरचना में बदलाव करता रहा है। भारतेंदु युग से लेकर आज तक इस विधा ने शिखर स्थापित किए हैं और अपनी यात्रा में यह अनवरत और अपराजेय है।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अंतर पाठीयता के कारण ललित निबंध ने अपने आत्मिक और शारीरिक विधान में अनेक अंतर-प्रसंगों की सन्निधि पा रखी है। लेखक का बहुपठित और बहुश्रुत होना, ललित निबंध की अपेक्षा है, इसलिए लेखक की अनुभूतियों की छाप शिल्प पर भी पड़ती है। ललित निबंध की अर्थगर्भता उसे गंभीर बनाती है तो उसकी विनोदप्रियता उसे परिहासात्मकता देती है। रागात्मकता का प्रतिफलन भाषा की काव्यात्मकता में होता है।

साहित्यकार का अनुभव साहित्य-रचना की पूँजी है। अनुभवों की प्रभावात्मक अभिव्यक्ति महत्वपूर्ण होती है। सामान्य तौर पर इसी अभिव्यक्ति की भंगिमा या तौर-तरीके को शैली कहा जाता है। रचनाकार शैली को चित्ताकर्षक बनाने के लिए कारीगरी करता है। वह रचना में शिल्पकार से भी अधिक बारीक बुनावट, भंगिमा तराश करता है। ललित निबंध अपने आनुभूतिक जगत में रागात्मक है। रागात्मकता में प्रवाह होता है। सौंदर्य अपनी शिवत्व भंगिमा के साथ होता है, अतः भाषा की महनीयता अपने-आप उभरती है। वाक्यों का प्रवाह झोंक में नहीं, एक सहजता में जीवन-जगत के तटों को छूता हुआ अग्रसर होता है। इस प्रवाह में संस्कृत-प्राकृत से लेकर लोकभाषा के शब्द एक साथ डुबकी लगाते हैं, और पूरा प्रवाह, पर्व में बदल जाता है।

पाश्चात्य विद्वान लूकाज कहता है कि "शैली सुंदर अभिव्यक्ति का माध्यम है।" अभिव्यक्ति की सुंदरता स्थूल और सूक्ष्म दोनों क्षेत्रों से प्राप्त होती है। प्रयोगगत और भाषा का रूपगत सौंदर्य ललित निबंध का उद्देश्य नहीं है। प्रतिपाद्य भी नहीं है। ललित निबंध भाव और विचार के सुमेल और सामंजस्य से बना रसायन है, अतः उसका प्रतिपाद्य सुकोमल और सुंदर है, लेकिन वह सौंदर्य, समय के ठोस धरातल पर खड़ा है, जिसकी उपस्थिति शिवत्व की संचारिणी है। इसीलिए केवल भाषाई सौंदर्य ललित नहीं है। सौंदर्य की अर्थ-गर्भिता और उसकी ब्रह्मांड में होने की महत्ता कितनी है, इसका आख्यान आवश्यक है। ललित निबंध का शिल्पगत सौंदर्य भाषा की अभिव्यंजना शक्ति और अर्थगांभीर्य में निहित है।

ललित निबंध अपनी बनक में काव्यात्मक है। हृदय की द्रवणशीलता सीधे उतरकर बरसती है। उसका बुद्धि से सांद्रीकरण नहीं होता। इसका अर्थ यह नहीं कि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ललित निबंध बुद्धि की बस्ती के बाहर से निकल जाता है। वह बुद्धि भाव को संभालती भी है और उसका एकांत भी तोड़ती है। इसलिए ललित निबंध गद्य कविता नहीं है। वह अपनी पूरी संरचना में ही एक खास किस्म का माधुर्य लिए होता है। चूँकि हृदय के लक्ष्य में सौंदर्य सहयात्री की भूमिका निभाता है, अतः उसका स्पर्श और आग्रह दोनों ही शिल्प में उतरते चलते हैं। सौंदर्य-बोध रचनाकार की दृष्टि और क्रिया दोनों को प्रभावित करता है। यदि केवल दृष्टि तक ही सौंदर्य रहा और वह क्रिया में नहीं आया, तो वह अधूरा बोध हुआ। ललित निबंध इस अर्थ में एक पूर्ण सौंदर्यबोधी विधा है, जो अपनी आत्मा और शिल्प दोनों में सौंदर्य को उसके शिवत्व के साथ धारे हुए है।

ललित निबंधकार के बहुपठित और बहुश्रुत होने की बात ऊपर कही है। मिथकों, पुराकथाओं और लोककथाओं का समावेश ललित निबंध में रचनाकार के इन्हीं गुणों की देन है। विषय के विस्तार और उसकी पुष्टि दोनों ही उद्देश्य इनसे पूरे होते हैं। सांस्कृतिक बोध और परंपरा से रसधार ग्रहण की प्रबल आकांक्षा तो काम करती ही है। मिथक, पुराकथाएँ और लोककथाएँ रोचकता पैदा करने के साथ ललित निबंध में काल की चक्रीय और रेखीय स्थिति को जोड़ने का काम भी करती हैं। ललित निबंध बीती कथा को वर्तमान की कहानी बनाकर पेश करता है। इसके पीछे उसका उद्देश्य बीते हुए कल के प्रति आसक्ति भरा अरण्यरोदन नहीं है, बल्कि कल से रस ग्रहण करते हुए आज को ताकतवर बनाकर कल तक जीने की अकुंठ साधना है।

लोकगीतों की रसगागर के बिना भारतवर्ष के आतुर-व्याकुल कंठ की प्यास बुझती नहीं है। ललित निबंध भारतीय जन की शक्ति, माटी के प्रति उसकी रागात्मकता में तलाशता है। न केवल शक्ति, बल्कि उसकी पहचान भी उसी से करता है। ऐसा करके ललित निबंध वैश्विक होने की कुंठा से मुक्त होते हुए स्थानीयता में वैश्विकता की क्षमता हासिल करता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने बहुत पहले 'साहित्य की महत्ता' नामक निबंध में कहा है कि जो व्यक्ति अपनी माँ की सेवा-सुश्रुषा छोड़कर, दूसरे की माता की सेवा करे वह मातृभक्त नहीं है। यह बात साहित्य के संदर्भ में भी है। आज सारी विधाएँ, यथा—विश्व कविता, विश्व उपन्यास, विश्व कहानी, विश्व नाटक बनने की होड़ाहोड़ी कर रहीं हैं। वहीं ललित निबंध विशुद्ध भारतीय जमीन की विधा बनी हुई है। इसके पास लोक की सहजता भी है। आत्मा भी। बनक भी। भाषा-बानी भी। लोक संदर्भ लोकगीतों में भरे हैं। लोकगीत, निबंध में लोक के राग, लय और सांस्कृतिक संदर्भों को एक साथ उपस्थित करते हैं, जिससे पाठकीय संवेदना तो जुड़ती ही है। पाठक अपना प्रतिबिंब भी निहारता है।

संवादात्मकता नाटक का तत्व है, लेकिन ललित निबंध ने कथोपकथन को अपने कथ्य का उपादान बनाया है। ललित निबंध में प्रकृति मनुष्य बनकर तो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अधिकांश जगह मौजूद है और वागर्थ की धरित्री भी कई जगह है। लेकिन कथा का शिल्प ही पूरा विषय विश्लेषित कर दे, यह ललित निबंध ने कर दिखाया है। इस संवादात्मक बनक के स्रोत हमारे आदिग्रंथ हैं। मनुस्मृति तो पूरी प्रश्न-उत्तर शैली पर आधारित है। ललित निबंध की संरचना में संवादों ने नवीनता के साथ-साथ चरित्रों की अवतारणा की है, जो निबंध जैसी गद्य विधा में असंभव-सी थी।

ललित निबंध अपने शिल्प में सारी विधाओं का जल उसी तरह समेटे हुए है, जिस प्रकार ऋषि स्नान-पात्र में सातों नदियों के जल का आह्वान करता है। ललित निबंध कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक के तत्व-स्पर्शी संकुल से एक नया और अद्‌भुत सुंदर विधान है। इस दृष्टि से यह सभी विधाओं का समन्वयात्मक रूप नहीं है, बल्कि विधाओं की सहअस्तित्वगत संरचना की दृष्टि से यह भारतीय संस्कृति की प्रातिनिधिक विधा है।

डॉ. गुलाबराय 'काव्य के रूप' में निबंध पर विचार व्यक्त करते हैं : "निबंध उस गद्य रचना को कहते हैं, जिसमें सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छता, सौंदर्य और सजीवता तथा आवश्यक संगति और संबद्धता के साथ किया गया हो।" यह परिभाषा ललित निबंध पर भी अपने तात्विक विस्तार में ठीक बैठती है। ललित निबंध का आकार छोटा ही होता है। एक भावात्मक-विवेकपूर्ण पहुँच के साथ ही रचना समाप्त हो जाती है।

ललित निबंध विषय को केंद्र में रखते हुए भी अनेक संदर्भों, अनेक कथाओं, अनेक स्थलों और अनेक क्षितिजों तक घूमकर और फिर अपने विषय पर आ जाता है। अनंत आकाशचारी होकर भी उसकी डोर विषय के हाथों में रहती है। ललित संरचना में स्वच्छंदता उसकी गति में रहती है, लेकिन उसका अंतर-अनुशासन उसे अपने गंतव्य से भटकने नहीं देता।

ललित निबंध को जहाँ-कहीं गलत और असंगत लगता है, उसे व्यंग्य और परिहास द्वारा आड़े-हाथों लेता है। एक गहरी तिलमिलाहट ललित संदर्भ के बीच से फूटती है और बात का भेद खोल देती है। अर्थात शिव का नंदी शिवत्व की रक्षा करता है, दूसरी ओर वह गलत को सींगों से उछालकर पटकनी भी देता है। ललित का यह रूप ज्वलित नहीं है। उसका यह रूप जीवन को सांप्रतिक और समसामयिक समस्याओं से आँख चार करने की क्षमता है।

ललित निबंध अपने संरचनावादी स्वरूप में रूपवादी कतई नहीं है। वह वाक्यों की लड़ी-पर-लड़ी गूँथता है और विषय पाँखुरी-पाँखुरी खुलता है। रचना के अंत में पाठक एक सुगंध से भर आता है। यह सुगंध उसे तृप्ति तो दे देती है, उसके भीतर ललित सृष्टि भी करती है। विषय की गूढ़ता को आमंत्रित तो करती है, परंतु

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह भाषा सूत्रात्मकता लिए होकर भी अर्थ को संप्रेषित अपनी ललित ललाम भंगिमा से करने में सिद्ध होती है। अपनी अंतर-संरचना में ललित निबंध गोदड़ी के धागों सरीखा होता है। ललित निबंध में सहज प्रवाहवश लंबे-लंबे वाक्यों की कद काठी मिलती है, तो इन पंक्तियों के लेखक के ललित निबंधों में छोटे-छोटे वाक्यों की ध्वनि का सौंदर्य भी विषय पर निहाल है। कहीं-कहीं तो दो-दो शब्द के वाक्य भी हैं। लेकिन अपनी यात्रा में जिद्दी और सचेत। सौंदर्य की पाँखुरी-पाँखुरी की रसवंती छवि और ललित निबंध के पुष्प का अपनी संपूर्णता में खिल उठना। यह संपूर्णता ही ललित निबंध को युग के साथ चलते हुए आनेवाले समय की संस्कृति संदर्भित रसधर्मी विधा सिद्ध करती है। ललित निबंध पाँखुरी से पाषाण की तराश है।

इस पुस्तक में 'ललित' के उपर्युक्त स्वरूप को ही शब्द देने का विनम्र प्रयास है। ये निबंध इसी दुनिया के हैं और इन निबंधों की दुनिया सौंदर्य, मूल्य और स्वतंत्रता की है। इन ललित निबंधों के लेखन और पुस्तक रूप में संग्रह करने में अग्रजतुल्य डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय की प्रेरणा और स्नेह मेरे भीतर दीपक की तरह प्रकाश बिखेरते रहे हैं; उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। आलेख प्रकाशन के निदेशक आदरणीय श्री उमेशचंद्र अग्रवाल ने इन ललित निबंधों को पुस्तक रूप में प्रकाशित करना स्वीकार किया; उनका आभारी हूँ।

इति शुभम्।

—श्रीराम परिहार

गुरुपूर्णिमा, 2062
21 जुलाई, 2005

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनुक्रम

परमात्मा का जन्म और कविता	15
प्रकृति का गीत : सत्य का संगीत	20
प्रकृति और पुरुष की आदिम प्रेम-कथा	26
बचा लें थोड़ी-सी धरती, थोड़ा-सा आकाश	30
सपनों से झाँकती नयी सदी	35
नींद उड़ गई	40
मेरा दिल फिक्र में है	44
हंसा कहो पुरातन बात	49
आकाशप्रिया के नाम पाती	54
पृथ्वी की चिट्ठी; आकाश के नाम	58
वासंती पत्र पर लिखा निसर्ग का काव्य	64
मन में खुशबू-सी झरी	69
अकेले होते चले जाना	73
पानी है अनमोल	78
घर-बाजार और कबीर	84
पृथ्वी को बचाने की चिंता	88
ज्योति का पहला तीर्थ	93
गुलाब की पंखुड़ियों से	98
टेसू के नवल छंद	102
शुक्र तारे से शृंगारित साँझ	109
चित्रकूट से आम्रकूट	114

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परमात्मा का जन्म और कविता

प्रकृति के टूटने में भी सौंदर्य होता है। उसका टूटना भी सर्जन को जन्म देता है। करोड़ों वर्ष पहले एक तारा टूटा। पृथ्वी का जन्म हो गया। नवग्रहों का रहस्यमयताओं से भरा एक परिवार सौर मंडल में झूलने लगा। केंद्र टूटा तो परिधि का जन्म हुआ। शून्य चहचहाहट से भर गया। केंद्रीय चेतना बिखरी तो वैश्विक सौंदर्य कण-कण में जाग उठा। धरती की माटी की एक-एक रज रस से भरी हुई है। धरती का रस वनस्पति में शुभ के संदर्भ लिखने लगा। केंद्र की चेतना धरती में और धरती की चेतना वानस्पतिक सत्य में मुस्कुराने लगी, समुद्र ने स्वयं को तपाया तो आकाश में बादलों की घटा घिर आई। बादल घिरे तो सौ-सौ सपन कल्पनाओं के रंगों से भर गए। बादल हजारों बूँदों में बिखरकर जीवन के अर्थ भासने लगा। बादल का सौंदर्य केवल आकाश में तैरते रहने में ही नहीं है, उसका सौंदर्य आकाश के शून्य में नाचती, कुलाटी मारती बूँदों का धरती पर मोती-सा बिखर जाने में है। बादल का सौंदर्य बूँदों में शिवत्व बनकर बहता है। पहाड़ का हृदय टूटता है तो झरने का जन्म होता है। पहाड़ का झरना बन जाना स्थिर सौंदर्य का गतिमान हो जाना है। तरल हो जाना है। जीवन हो जाना है। शुभ से भर जाना है।

प्रकृति का सर्जन भी परम सत्ता ने किया है। परम चैतन्य कैवल्य है। अकेला है। एक ही है। *'स एष एक एकवृदेक एव'* (अथर्ववेद 13-5-7) उसके समान और समानांतर कोई दूसरा है ही नहीं। उसी में अनंत ब्रह्मांड हैं। उसी से अनंत-अनंत ब्रह्मांड स्फुटित होते हैं और उसी में समाहित होते हैं। जैसे सूर्य से किरणें प्रकटती हैं और उसी में सिमट जाती हैं। *"प्रभा जाई किमि भानु बिहाई।"* सूर्य का किरणों में प्रभावान होना ही उसकी सत्ता की महत्ता है। ऐसा नहीं होता तो पता नहीं क्या होता? पृथ्वी पर जीवन नहीं होता। सृष्टि का स्वरूप कुछ और होता। पर उस चैतन्य ने अपनी शक्ति को, अपनी इच्छा को विस्तार दिया तो गति पैदा हुई। गति आई तो वायु का शीतल झोंका शून्य में झूल गया। वायु ने पुकार लगाई तो अग्नि दौड़ी चली आई। सूर्य अपनी प्रभा के साथ सत्य को नये-नये वस्त्रों से सज्जित करने लगा। यदि यह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सब नहीं होता तो परम सत्ता के होने का भी क्या अर्थ रहता? सत्ता की महत्ता सत्ता से इतर और सत्ता से जुड़े हुए लोगों और तत्वों के कारण ही होती है। कोई निर्बल है, उसकी तुलना में ही किसी बलवान को परिभाषित किया जा सकता है। कोई असुंदर है इसलिए ही कोई सुंदर है। असुंदर की तुलना में ही कोई सुंदर है। हालाँकि यह भाव ठीक नहीं है। सृष्टि में कुछ असुंदर नहीं है। कुछ भी त्याज्य नहीं है। पूरा मामला कार्य-कारण का परिणाम है। कोई विस्तारित हुआ; धरती के गमले में फूल खिल उठे और आकाश के महल में दीप जल उठे।

यदि संसार का सौंदर्य नहीं जन्माया जाता तो परमात्मा का जन्म भी नहीं होता। जिस क्षण संसार बना, उसी क्षण परमात्मा का जन्म भी हुआ। संसार के जन्म से पहले वह परम चेतना अपनी सत्ता में मौजूद थी, तो थी; उससे किसी का कोई संबंध ही नहीं था। क्योंकि संबंधों का जन्म भी सृष्टिरचना के साथ ही हुआ है। संबंध, रचना से ही जन्मते हैं। रचना होते ही सौंदर्य फलित होता है। संबंध उस रचना के साथ ही हुआ है। संबंध उस रचना में सौंदर्य को बिंबित पाते हैं। जैसे माँ, बेटे में सत्य को ही सौंदर्य रूप में देखती है। सृष्टिरचना यदि नहीं होती तो वह परम सत्ता भी संबंध रहित और सौंदर्यहीन होती। एक स्त्री बच्चे को जन्म देते ही माँ बन जाती है। बच्चे के जन्म से पहले वह स्त्री तो रहती है, परंतु माँ नहीं होती। स्त्री, देह का एक सत्य है। एक जैविक संरचना आधारित सत्य है। लेकिन बच्चे को जन्म देना उस सत्य का सौंदर्य में परिणित हो जाना है। एक रचना का जन्म लेना है। बच्चा सबको दिखता है, मातृत्व दिखता नहीं है। वह अमूर्त है, लेकिन वह क्षण-क्षण की तृप्ति, विस्तार और व्यवहार में प्रकट होता है। यह प्रकटन ही शिव है। बच्चे के जन्म के साथ ही माँ का भी जन्म होता है। उसके पहले वह साधारण स्त्री है। सृष्टि रचना के साथ ही दो का जन्म हुआ—एक जगत की सत्ता का, दूसरा परम-सत्ता का। अन्यथा परम-सत्ता अपने रहस्य में स्थित थी। उसे कौन सत्ता की तुलना में परम-सत्ता की संज्ञा देनेवाला था?

बिना सृष्टि के स्रष्टा का संबोधन झूठा है। जो रचना करता है, वह स्रष्टा है। रचना का सर्जन सत्य को सौंदर्य रूप में उपजाता है। उसका व्यापक प्रभाव सृष्टि के तत्व-तत्व पर पड़ता है। वह शिव है। वह शुभ है। इस रूप में कवि दूसरा स्रष्टा है। परम-सत्ता ने सृष्टि को उपजाया। माँ ने जीवन का दीप जलाया। कवि ने शब्द-रचना में सृष्टि को गाया। एक सत्य है। दूसरा सौंदर्य है। तीसरा शिव है। कविता का मूल लक्ष्य तो शिवत्व ही है। सत्य, सौंदर्य और शिव ईश्वर, धरती, माँ और कवि की रचना में सहज तथा अनायास प्रकट होते हैं। जो प्रयास से हो वह रचना नहीं। कविता नहीं। वह निर्माण है। निर्माण में बुद्धि लगती है। रचना में हृदय ही प्रकट होता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। बुद्धि उसे सँवारती है। काँट-छाँट करती है। हृदय आगे रहता है। बुद्धि पीछे रहती है। जैसे सृष्टि का जन्म शून्य में सहज हुआ। बच्चे का जन्म स्वाभाविक रूप में होता है। उसी तरह कविता भी शून्य में सहज प्रकटती है। जो जन्मजात कवि होता है, उसकी कविता रचना होती है; निर्माण नहीं। कविता रची जाती है, निर्माण नहीं की जा सकती। सहज स्फुरित कविता और सप्रयास की गई कविता में उतना ही फर्क है, जितना रचना और निर्माण में होता है।

रचना और निर्माण का फर्क स्वाभाविक रूप से, प्राकृतिक रूप से जन्म लिए हुए बच्चे और टेस्ट ट्यूब से पैदा किए गए बच्चे जैसा है। दोनों स्त्री-पुरुष के ही अंश हैं, परंतु प्राकृतिक रूप से गर्भस्थ बालक और टेस्ट ट्यूब में स्त्री-पुरुष के अंश को संरक्षित-संवर्धित गर्भस्थ बालक के गुण-धर्म में बहुत अंतर होगा। लाख कोशिश और सावधानी के बाद टेस्ट ट्यूब से तैयार स्त्री-पुरुष के बीजाणु को बाहरी वातावरण का धक्का तो लगेगा ही। अतः प्राकृतिक रूप से जन्मे बालक की अपेक्षा टेस्ट ट्यूब के बाद माँ के पेट में गर्भस्थ होकर जन्मा बालक कमजोर होगा। यही प्रतिभाजन्य कविता और कोशिश कर बनाई गई कविता की भी स्थिति होती है। सच्चे कवि से कविता हो जाती है। उसे कविता बनानी नहीं पड़ती। कविता की कोई पूर्ण निर्धारित फ्रेम नहीं होती। जो कविता व्यक्ति को मुक्त करती है। पहले उसका स्वयं मुक्त होना आवश्यक है। उसकी प्रतिबद्धता केवल सृष्टि के प्रति होती है। जीवन के प्रति होती है। सृष्टि और जीवन की समग्रता के प्रति होती है।

यह समग्रता आती है केंद्र से परिधि की ओर तथा परिधि से केंद्र की ओर बढ़ने तथा जाने से। ईश्वर की संपूर्णता संसार को मिलाकर ही है। जर्रे-जर्रे में जो रस प्रतिबिंबित है, उन सबसे मिलकर ही महारस बनता है। वह स्रष्टा ही महारस है। महाललित है। महारस ही बूँद-बूँद सृष्टि के अणु-परमाणु में सरस है और यह बूँद-बूँद रस मिलकर ही महारस का संकेंद्रण है। असंख्य-असंख्य नदियाँ महासमुद्र में जीवन डालती हैं और वह महासागर ही बूँद-बूँद वारि से नदियों को भरता है। पहाड़ों-घाटियों, दर्रों से टपकती बूँदों का संचयन ही नदी बनता है। एक जीवित नदी। स्रोतस्विनी। गंगा-नर्मदा-वोल्गा-मिसीसिपी। एक चक्र है—समुद्र-बादल-बूँद-नदी फिर समुद्र। बीज-वृक्ष, फूल-फल फिर बीज। पंच तत्व, जन्म-जीवन-मृत्यु फिर पंच तत्व। इसके केंद्र और परिधि के बीच रस बहता रहता है।

असली कवि के काव्य का स्वरूप इस केंद्र और परिधि के बीच के संबंधों के आधार पर बनता है। वह परिधिगत बिंबों से कविता में रस ग्रहण करते हुए केंद्र की ओर बढ़ता है। वह दिल्ली से खंडवा को नहीं देखता। बल्कि खंडवा के पास के गाँव से दिल्ली को देखने पाने की कोशिश करता है। काव्य-रूप का भी एक राष्ट्रीय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्वरूप होता है। यह स्वरूप सारे देश में बिखरे सौंदर्य और सत्य को अनुभव और भाषित कर ही रचा जा सकता है। स्थानीयता से पुष्ट होकर ही वैश्विकता से लड़ा जा सकता है। विश्वग्राम में सबका चेहरा या तो गुम गया है या बेपहचान हो गया है। कारण विविधता का सौंदर्य खत्म हो गया है। कविता इसी विविधता में आश्रित सौंदर्य को पकड़ती है। जीवन भी विविधताओं का पुष्प-स्तबक है। इसलिए कविता को दूर-दराज के सौंदर्य तक जाना ही होगा। स्थानीयता से जोड़ना ही होगा। उत्तर आधुनिकता में भी स्थानीयता पर बल है। यह स्थानीयता लगभग पूरे विश्व में आई है। केंद्रीयता बिखर रही है। क्षेत्रीय दलों का उदय हो रहा है। संगठन बिखर रहें हैं। व्यक्तिगत आकांक्षाओं का सौंदर्य सक्रिय हो रहा है।

महानगरों में ग्रामीण बिंब गायब हो रहे हैं। महानगरों में जीवन प्रकृति से दूर जा रहा है। सहजता से दूर जा रहा है। अत: महानगरों में उपजी और केंद्रित कविता भी प्रकृति से दूर हो रही है। असहज हो रही है। महानगरों जैसे कि दिल्ली में साहित्य का केंद्रीकरण ठीक नहीं है। महानगरों के केंद्र साहित्य कम, राजनीति ज्यादा कर रहें हैं। राजनीति का अपना महत्त्व है। उसका अपना क्षेत्र भी है। परंतु साहित्य में राजनीति या साहित्य की राजनीति कविता या साहित्य को अप्राकृतिक बनाती है। महानगरों का स्थूल सौंदर्य भी कविता को विविधता से दूर कर रहा है। वहाँ नदी ड्राइंग रूम में फ्रेम होकर टँगी है। यदि सचमुच की नदी है भी तो वह दिल्ली की यमुना या कानपुर की गंगा है। तब बूँद-बूँद का रस और रज-रज की महक कविता में कैसे आएगी? गाँव में राजनीति घुस जाने और गाँवों के बदल जाने के बाद भी अभी बहुत कुछ प्राकृतिक और सहज बचा हुआ है। नये बिंबों को प्राप्त करने और कविता को नयी बनाने के लिए गाँवों की ओर लौटना होगा। प्रकृति की ओर जाना होगा।

प्रकृति परमाप्रकृति की सहज कविता है। वह परमसत्ता के हृदय-कुंभ से छलकी अमृत की बूँदें हैं। प्रकृति का सान्निध्य ही कवि को प्राकृत से संस्कृत बनाता है। प्रकृति का सान्निध्य कवि को संस्कारित करता है। प्रकृति का सहज स्वरूप अपने स्वानुशासन से बँधा होता है। प्रकृति से संस्कारित कविता भी सहज प्रकट होती हुई स्वानुशासन में बद्ध होती है। समस्त प्रकृति में एक नैसर्गिक लय चल रही है। वह जड़-चेतन सबकी धड़कनों में धड़क रही है। वह प्रकृति में सहज विकास पाती है। वह लय ही कवि की प्रतिभा से कविता बनकर, साहित्य बनकर बहती है। इस कारण जो सहज लयबद्धता प्रकृति में है, वही लयबद्धता सहज कविता में भी होती है। इसीलिए कवि बार-बार वनफूलों की ओर जाता है। वह खेतों की ओर लौटता है। उसकी कविता चाहती है—*'सूखी रोटी खाएगा जब कृषक खेत में धरकर*

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हल, तब मैं तृप्ति दूँगी उसे बनकर लोटे का गंगाजल।' (दिनकर) कविता मेहनत के सिपाही पर द्रवित होती है तो प्रकृति पसीज उठती है। उसकी कविता गाती है- '*अमल धवल गिरि के शिखरों पर बादल को घिरते देखा है।'* (नागार्जुन) घिरे हुए आतुर-आकुल बादल जब धरती पर बरसते हैं तो कवि की वाणी फिर गाती है— '*बरसात आ गई रे, बरसात आ गयी रे।'* (भवानीप्रसाद मिश्र) कविता इस रूप में प्रकृति की लय से जुड़कर चराचर की लय को पकड़ती है। वह गीत की संस्कृति रचती है।

ऋग्वेद में आता है कि '*न देवानामति व्रतं शतात्मा च न जीवति*'। (10-33-9) देवताओं के नियम को तोड़कर कोई सौ वर्ष नहीं जी सकता। प्रकृति भी देवता है। मनुष्य के भीतर बैठा शब्द भी देवता है। जब अनुभव का घड़ा भर जाता है तो अपने-आप व उभलाने लगता है। जिस क्षण अनुभव रसधार बनकर कविता के रूप में झरता है, उसी क्षण कवि का जन्म हो जाता है। कविता स्वयं तो जन्मती है, कवि को भी जन्म देती है। इस सहजजन्मा कविता और कवि की लय की सहजता ही प्रकृति के काव्य की अनुसंगिनी हो सकती है। झूठ से बचकर सत्य को धारण कर सकती है। हम कामना करें—हिंदी कविता और विश्व कविता विखंडन के बर्फीले ध्रुवों से निकलकर अमेजन, नील, ह्वांगहो और गंगा-नर्मदा के कछारों की खुली धरती पर अमरता के छंद रचेगी।

❑

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रकृति का गीत : सत्य का संगीत

आकाश में नर्मदा बह रही है। एक परिक्रमावासी उसके किनारे-किनारे चला जा रहा है। अब नर्मदा उस संन्यासी के कमंडल में समा गई है। थोड़ी देर बाद देखा तो वह संन्यासी एक पेड़ की छाया में बैठा है। सामने वेदी है। उसमें से अग्नि उठ रही है। फिर यह सबकुछ मिट गया। एक ग्वाला काँधे पर लकड़ी लिए चला जा रहा है। आगे-आगे गायें जा रहीं हैं, पीछे-पीछे ग्वाला। अब उसके काँधे की लकड़ी हाथ की बाँसुरी बन जाती है। अब वह बाँसुरी बजा रहा है। गायें आकाश के मैदान में चरने लगी हैं। एक बछड़ा पूँछ ऊँची कर कुलाचें मारने को तत्पर है। एक गाय बछड़े को दूध पिला रही है।

दूसरे क्षण यह सब साफ हो जाता है। एक खेत में किसान हल चला रहा है। एक बैल सफेद है, दूसरा श्यामल। थोड़ी दूर पर गागर लिए किसान की पत्नी खड़ी है। अब वे दोनों हँस रहे हैं। बैल हल से छूटकर न जाने कहाँ चले गए। किसान और उसकी स्त्री के पास बेटी आकर खड़ी हो जाती है। माँ उसके सिर पर हाथ फेर रही है। बेटी के हाथ में बस्ता आ जाता है और वह स्कूल चली जाती है।

पूरब के आकाश में धुंआ-सा उठता है और उसमें से रेलगाड़ी निकलकर सिर-चढ़े आकाश के स्टेशन पर आकर रुक जाती है। अब उसी जगह एक बड़ा-भारी कारखाना खड़ा है। भिलाई का इस्पात कारखाना उसी में से निकलकर धरती पर आ थमता है। यह भी संभव है कि भिलाई इस्पात कारखाने का ही चित्र आकाश के फलक पर छप रहा हो। उस कारखाने के पास एक सूखी नदी है। उसमें एक ट्रक उलट गया है। उसके ऊपर खड़ा फटे कपड़ोंवाला आदमी हँस रहा है। जोर-जोर से हँसते हुए धनुष हुआ जा रहा है।

थोड़ी देर बाद आकाश में पहाड़ खड़े हो जाते हैं। हिम मंडित पहाड़। ग्लेशियरोंवाले पहाड़। उनसे निकलती हैं—सदानीरा नदियाँ। नदियाँ जोड़ती हैं पहाड़ों को समुद्र से। वे सेतु बन जाती हैं। फिर नदियाँ सूख जाती हैं। उनके आस-पास का अरण्य मरुस्थल में बदल जाता है। फिर ग्लेशियर पिघलते हैं। समुद्र उफान भरते हैं। आकाश में बनी धरती डूब जाती है। उसमें सबकुछ डूब जाता है। सबकुछ। हिमालय भी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अब आकाश बिल्कुल साफ है। उसमें कुछ भी, कोई भी चित्र नहीं है। बिल्कुल साफ—प्रलय के बाद की धरती के समान-शून्य और मौन।

यह चमत्कार जैसा कुछ नहीं है। मैं हरिद्वार में 'हर की पौड़ी' पर गंगा में पाँव डुबाए बैठा हूँ। आकाश में बादलों के द्वारा बनते हुए चित्र देख रहा हूँ। आकाश में लिखी जा रही प्रकृति की कविता पढ़ रहा हूँ। धरती का लालित्य गंगा बनकर बहता जा रहा है और प्रकृति का लालित्य आकाश की छत से उतरकर कण-कण में मौन होकर बैठ रहा है। वह पत्र-पत्र में मुखर हो रहा है। उत्तर की तरफ देखता हूँ तो नगाधिराज हिमालय के रूप में धरती के सौंदर्य के ढेर के ढेर लगे हैं। अद्‌भुत है यह सबकुछ। हिमालय से निकलती हुई गंगा और मेकल से निकलती हुई नर्मदा के रूप में लालित्य कला बनकर बह रहा है।

यह किसकी कला है जो पहाड़ को हिमालय और नदी को गंगा बनाती है? और यह भी किसकी कला है कि हिमालय को पहाड़ और गंगा को नदी बनाती है? किसने बनाई हैं ये कलाकृतियाँ? कौन है जो बादलों को नाना नाम-रूप-आकार देता है? कौन है जो चंद्र-सूरज की आँखों से ब्रह्मांड को देखता है? कौन अदृश्य हाथों से मानव-मूर्तियाँ बनाता है? उन मूर्तियों के रंग अलग। रूप अलग। आकार अलग। एक से दूसरी सर्वथा भिन्न। किसने बादलों को बूँदों में बदलकर धरती पर जीवन की रतन-जड़ित गागर को भरा है? कौन श्वास-प्रश्वास में स्वयं को ही जिंदा रखे हुए है? कौन घर की खिड़की के शीशे पर धुंध बनकर चिपकता है? कौन झील की गहराई में स्वयं की गंभीरता की थाह लेता-सा प्रतीत होता है? वह कौन है जो दाल के दो पाटों के बीच अपने को अंकुरण की नाक के रूप में बचाए रखता है? कौन है जो जीवन में रोज जन्मता है और मृत्यु में रोज मरकर भी अमर रहता है?

कौन काल की अनंतता के केंद्र में स्वयं को स्थित किए हुए है? मसूरी के पास पहाड़ पर से गिरता और तेज दौड़ता 'केवटीफाल' किससे मिलने को इतना-आकुल-आतुर है? उसकी बिखराहट में भी लय है और उसके बहने में संगीत है। किनारे चट्टान पर बैठकर कभी सुना है— उसकी क्षण-क्षण की गति से फूटते संगीत को। यह झरने की सौंदर्य-सुवास है या सत्य का संगीत? किनारे बैठे ये पत्थर; इनसे बड़ा तपस्वी कौन है? आँधी, वर्षा, सर्दी, गर्मी, चाँदनी सबमें अडिग और अविचल। भला कोई है इतना अटल साधक? पहाड़ों की घाटियों में गूँजती हवाओं की वीणा और बाँसवनों से बजती बाँसुरी के रसभीगे सुरों में कौन पुकारता है? इस पुकार पर जब भी कोई बावरा-सा दौड़ा है, जब भी कोई इनके साथ बजा है, वह प्रकृति हो गया।

प्रकृति होने के साथ ही संस्कृति बनने की प्रक्रिया शुरू होती है। कला,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
संस्कृति का एक आयाम है। कला का मूल घर प्रकृति है। प्रकृति कला की जन्मदात्री भी है, प्रेरक भी और पोषक भी है।

जब-जब हिमालय की ओर दृष्टि जाती है, एक सम्मोहन-सा जगता है। जो चैतन्य हिमालय की अचलता और संभार के रूप में सामने है, वही चैतन्य का अंश हमारे भीतर भी अंशतः स्थित है। ये दोनों अनंत काल से अनंत दिशाओं में साथ-साथ चले जा रहे हैं। इसीलिए तो हमारे भीतर का चैतन्य हिमालय के सौंदर्य से जुड़कर महासौंदर्य की खोज की अनंत राह पर चल रहा है। चला जा रहा है। इस यात्रा का न तो आदि है और न अन्त। काल की इस अनंत पगडांडी पर अनेक संकल्पों-विकल्पों के साथ चलते हुए हम महाचिति की इच्छा को ही तो पूरा कर रहे हैं। इसी इच्छा की पूर्णता में आकाश में बादल चित्र बना रहें हैं। धरती पर हिमालय संकल्प-सा दृढ़ है। हिमालय और धरती पर स्थित सारे पहाड़ों से निकलती हुई गंगा सहित तमाम नदियाँ उसी चैतन्य से मिलने की तन्मयता में बावरी-सी दौड़ती जा रही हैं। ऊपर की घाटियों से नीचे के मैदानों तक की यह यात्रा महाचैतन्य की इच्छापूर्ति के लिए रचा गया सुंदर स्वर्ग है। महासागर अपनी उत्ताल भुजाओं में उसी चैतन्य को अँकवारने के लिए आकुल-आतुर है। वनस्पतियाँ फूलों के रूप में अपनी आत्मा को खोलकर उसी परम सत्य को सुवास का अर्घ देने हेतु उत्फुल्ल हैं।

यह सब महाचिति की इच्छा का ही परिणाम है। इसकी अभिव्यक्ति प्रकृति के नानाविध चित्रों में होती है। महाललित ने ही सारे चित्र बनाए हैं, जिसे हम प्रकृति कहते हैं। उसके सान्निध्य में व्यक्ति आया। व्यक्ति विकास की प्रक्रिया में आदिम संग-साथ प्रकृति का ही है। मनुष्य ने अपनी विकास-यात्रा में प्रकृति को देवी, माँ, सहचरी, प्राण के रूप में पाया। इस रूप में परमसत्ता की आद्या शक्ति पार्वती के लास्य की भंगिमाएँ उसे नजर आईं। कहीं महाप्रलंयकारी हिमपात, आँधी, अंधड़, झंझावात, वायु प्रभंजन, जल आप्लावन और समुद्र की भीषण तथा उत्ताल तरंगावलियों में शिव का तांडव ही रूपायित होता पाया है। प्रकृति के दोनों रूप कला के जन्म की प्रेरणा और कारण बने हैं। शिव का तांडव और पार्वती का लास्य ललित कलाओं की आधारभूमि है। इन प्रकृति-कृतियों में एक ओर परमललित को पाने की चाह है, तो दूसरी ओर कला के लालित्य को पाने और उसके विस्तार के छंद भी हैं।

प्रकारांतर से प्रकृति की कला भी इसे कहते हैं। प्रकृति की ये कलाकृतियाँ निरंतर बदलती हैं। क्षण-क्षण का परिवर्तन ही इनका सौंदर्य है। यह परिवर्तन ही साहित्य, नृत्य, चित्र, संगीत को जन्म देता है। अभी-अभी आकाश में बादल थे, अब नहीं हैं। अभी-अभी फूल पर तितली थी, अब नहीं है। जो पहली किरण का सौंदर्य हिमालय पर पड़ा वह दूसरी का नहीं है। सुबह के रंग कुछ और, शाम के कुछ और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हैं। माउंट आबू में सूर्यास्त को देखना जीवन के अद्भुत को पा जाना है। लेकिन पहले दिन के सूर्यास्त की छवि से दूसरे दिन के सूर्यास्त का सौंदर्य भिन्न है। यह भी कि पचमढ़ी के सूर्यास्त और माउंट आबू के सूर्यास्त की भंगिमाएँ भिन्न हैं। नर्मदा के भेड़ाघाट, पचमढ़ी के रजत प्रपात और अमेरिका के नियाग्रा प्रपात के पानी के गिरने की गति और संगीत में फर्क है। यह विविधता ही समान कार्य-कारण के बावजूद सुंदरता उत्पन्न करती है। जल का स्वभाव है—ऊपर से नीचे की ओर गिरना। यह विज्ञान का भी सत्य है। लेकिन उसमें तरंगायित गति और गति से उपजी अभिनयशीलता तीनों को अलग-अलाग छवि देती है। यह छवि ही कला का सत्य भी है। कला इसे ही पकड़ती है।

निरंतर परिवर्तनशीलता के कारण ही प्रकृति का रहस्य भी है और सौंदर्य भी। इस रहस्य को खोलने की धुन में जो जितना पागल होता है, उसके हाथों उतना ही सौंदर्य हासिल होता है। सौंदर्य गतिशील है; क्योंकि प्रकृति गतिशील है। यह सृष्टि सुंदर है, इसलिए कि समय का प्रत्येक टुकड़ा इसमें बदल पैदा कर देता है। जिस समय में हम अभी हैं, अगले ही क्षण हम वह नहीं रहते। हमारे साथ-साथ सृष्टि भी वह नहीं रहती, जो पिछले क्षण थी। हम एक समय में एक ही बार जीते हैं। वह क्षण कभी नहीं लौटता और हम भी उस स्थिति में कभी नहीं लौटते। कभी नहीं। वैसा का वैसा पुनर्जन्म लेकर भी नहीं। हम एक ही नदी को दुबारा नहीं पार कर सकते। जब हम पहला पैर नदी में रखते हैं तो जो नदी उस समय रहती है, अगला पैर रखते ही वह नहीं रहती। वह बह चुकी होती है। बस इसी सौंदर्य-निहित सत्य को पाने की कोशिश में कला की साधना चलती है। इसीलिए एक ही 'लैंडस्केप' के दो चित्र समान होते हुए भी बिल्कुल समान नहीं होते। क्योंकि पहला चित्र बनाते समय जो कलाकार की सौंदर्य-स्थिति भी, वह दूसरे चित्र में बदल गई है। उसके चित्र के रंगों में बारीक-सा फर्क आ गया है, क्योंकि कला-सर्जक के भीतर के रंग बदल गए हैं।

सौंदर्य आकर्षण को जन्म देता है। भयानकता भी आकर्षित करती है। सौंदर्य, जो लास्य मिश्रित है, उसे हम छूना चाहते हैं। पाना चाहते हैं। भयानकता जो तांडव है, उसे हम देखना चाहते हैं। समझना चाहते हैं। आकर्षण दोनों में है। प्रकृति में सुंदर-असुंदर नहीं होता। वहाँ सृष्टि होती है। उसके सारे ही स्वरूपों का लालित्य होता है। अर्थात भयानकता का भी एक सौंदर्य होता है। जो सिंह हरिण की गरदन मुख में दबाए हुए होता है, वह हरी घास पर लोट लगाता हुआ अगले ही समय-खंड में धूप सेंकता दिखाई देता है। यदि ऐसा नहीं होता तो क्या यह संसार रहने लायक होता? क्या बार-बार देखने की प्यास आँखों में जगती?

आकाश में बादल बनते हैं। मिटते हैं। चित्र बनते हैं। फलक साफ होता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
खलक नये-नये रूपों में फिर भी व्याख्या पाता रहता है। परिवर्तन विकास है। परिवर्तन आकर्षण है। परिवर्तन सौंदर्य है। एक मिटता है तो दूसरे का जन्म होता है। पुष्प टूटता है तो बीज का जन्म होता है। पत्ता झड़ता है तो नयी कोंपल आती है। बादल मिटता है तो बूँदों के जन्मोत्सव पर सोहर गाया जाता है। आँसू झरते हैं तो अवसाद मिटता है। एक सामान्य स्थिति और नयी आशा जन्म लेती है। प्रकृति की प्रत्येक कला का जन्म और मृत्यु सम पर रहती है। जन्म उसके लिए न उत्सव है और न मरण अवसाद। उसके लिए दोनों ही विकास, सौंदर्य और आकर्षण के बिंदु हैं। इसीलिए प्रकृति में मरण भी त्यौहार है। समर्पण भी महाप्रकृति की प्राप्ति है। बिना अपने को खोए, परमाप्रकृति को पाया ही नहीं जा सकता। वृक्ष बनने के लिए बीज का समर्पण और समुद्र बनने के लिए बूँद का समर्पण ही महाभाव का विस्तार है। सौंदर्य का नये-नये रूपों में रूपानंतरण है।

एक टुकड़ा-भर धूप कलम पर उतरती है तो मन की नदी बह निकलती है। ललित धारा जीवन के तटों को सींचती हुई सरकने लगती है। मीठी चाँदनी में सरकती यह सरिता सृष्टि का श्रृंगार बन जाती है। प्रकृति की कला के समकक्ष एक ललित प्रवाह बन जाती है। एक रोशनी का दरिया कूँची में समाता है तो समय के गतिशील क्षणों में उभरे दृश्य स्थिर हो जाते हैं। वानगॉग और पिकासो की कूँची से समय के वे टुकड़े दृश्यों में युग-युग के लिए फ्रीज हो जाते हैं। अमर हो जाते हैं। क्योंकि ये प्रकृति के स्वभाव के अनुकूल और अनुसार कला को विस्तार देते हैं। लेकिन जहाँ प्रकृति के खिलाफ कला-कृति जाती है। जहाँ कलाकृति अप्राकृतिक आचरण चित्रित करती है, उसे प्रकृति की प्रकृति और मानव की प्रकृति दोनों ही समय-कक्ष के कोने में रखी डस्टबिन में फाड़कर फेंक देती है। कला प्रकृति की सहजता का अनुकरण और विस्तार है। सर्जनात्मकता और शिवत्व से परिपूर्ण होते हुए वह संस्कृति बनती है। जब वह इससे हटती है, विकृति की हद में प्रवेश शुरू हो जाता है।

गुफा से निकलकर हवा का एक झोंका आता है। मस्तिष्क में विचार बनकर घुमड़ता है। विचार का उद्‌वेग आवश्यक नहीं। उसका संतुलन कला को उपयोगी बनाता है। ललित कलाएँ प्रकृति से प्रेरित उद्‌भावनाएँ होती हैं। प्रकृति से प्रेरणा प्राप्त उपयोगी कला भी होती है। लेकिन उपयोगी कला सृष्टि के हर तत्व को वस्तु मानती है और उसका मनुष्य के हित-अहित में उपयोग करती है। ज्वालामुखियों से लावा फूटना; और ठंडा होकर चट्टानों के रूप में उसका ढलना प्रकृति में घटित होता है। यह ही आधुनिक विकास की धमनभट्टियों, इस्पात कारखानों की कला का उत्प्रेरक है, कला के विचार का जन्मदाता है। विशाल कारखानों, उद्योगों, बाँधों, विशालकाय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अट्टालिकाओं के रूप में यह विचार मनुष्य की कला का उत्कृष्ट रूपांतरण है। इनका भी एक सौंदर्य है। एक आर्कषण है। भिलाई के इस्पात-कारखाने के भीतर जाएँ तो अक्ल काम नहीं करती। मनुष्य की अक्ल से निकली कला पर ही हमारी समझ, नासमझ हो जाती है। लोहा पानी बनकर नालियों में बहता है। अगले ही क्षण वह अलग-अलग रूपों में गलकर, ढलकर, कटकर बाहर हो जाता है। दूसरे दिन रेलगाड़ी में बैठकर मजे से अरण्यों की सैर करता हुआ एक नयी कला-सृष्टि के लिए चला जाता है। कमाल है मनुष्य की ललित संभावना का। चमत्कार है मनुष्य के भीतर बैठे चैतन्य का।

उत्तर में काली घटा घिर आई है। आसमान के फलक पर फिर कोई अद्‌भुत रंगों से अनुपम कृतियाँ बनाने लगा है। गंगा के पानी से स्फुटित संगीत विस्तार पाता हुआ मैदान के सीमांतों तक फैलने लगा है। सब तरफ एक मौन मुखर हो रहा है। एक चुप धरती पर अपने फैलाव में लेटा है। उसी के आँचल से सत्य का संगीत जन्मता है। उसी से पपीहे की आवाज में एक गीत फूटता है। उसी गीत की कड़ियों को काली घटा से बरसती बूँद गीला करने लगती है। धरती और आकाश का नेह उस बरसात में स्नान करने लगता है। साँझ 'हर की पौड़ी' पर उतर आई है। साँझ के साथ ही शैलसुता के जल में काली घटाओं के, नील गगन के, तारों के, लहरों के संगीत के, पपीहा के गीत के और हिमालय के शिखरों के कई-कई चित्र बनने लगते हैं। उन चित्रों में गहराता हुआ ललित जल के साथ ही तरलायित होकर महाललित को पाने के लिए गतिमान हो उठता है। मैं इन चित्रों के साथ ही देवसरि के नीर में अपना प्रतिबिंब निहारते हुए उस लालित्य को पकड़ना चाहता हूँ और मृगशिरा की पहली बरसात में बूँद-बूँद भीग जाता हूँ। 'मनसा देवी' की पहाड़ी पर पपीहा फिर बोलता है—'पी प्यासो; पी कहाँ'!

❑

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रकृति और पुरुष की आदिम प्रेम-कथा

वसंत की साँझ में जब सारी पगडंडी आम्र-बौरों की गंध से गदरा गई है, तुम पत्तियों की हरी चाह में एक सन्नाटा लिखने लगे हो। मेरे पाँवों में पगडंडी की मिट्टी पराग बन गई है। जहाँ-जहाँ कोंपले फूटती हैं; महसूस होता है कि तुम्हारा ही देह-राग शून्य में बज रहा है। रात ने आकाश के महल में तारों के दीप जला दिए हैं। पूनम चाँद का कंदील लिए निशीथ-पथ पर निकल पड़ी है। एक असीम खामोशी सूखे पत्तों-सी झर रही है। हवाएँ थरथराए गले से आवाज लगाती नदी तक दौड़ रही हैं और नदी की देह काँप उठी है। नदी के कंपन में एक आग समाई है। नदी उस आग के घूँट पीती है और गुनगुनाने लगी है। देखते-देखते नदी दूध की हो गई है। नदी में चाँद उतर आया है। चाँद की आग नदी की आग में घुल रही है और एक प्रकाश-बिंब वासंती गर्भ में हिलने लगा है।

वसंत कामधेनु को दुहकर चाँदनी के दूध से पृथ्वी की दोहनी को भर रहा है। रात पागल-सी हो उठी है। उसके केश दिक्पालों की अँगुलियों में उलझ गए हैं। आकाशगंगाएँ उन उलझे केशों की अलकें अलग कर रहीं हैं। लेकिन केशों का घनापन और रेशमीपन उलझा ही रहना चाहता है। यह माघ की ठंडी रात दूधो नहा रही है। इसकी देह से टपकती बूँदों के कई-कई फूल खिल उठे हैं। वे फूल सुबह होते-होते ओस के मोती बन जाते हैं। जब सूरज की किरणें उनमें अपना अक्स देखती हैं, तब मोतियों की आभा सतरंगी रेखाओं से एक खत लिखती है, उस खत में सितारों के हरफ और किरणों की भाषा लिखी होती है। क्या उस खत को तुमने कभी पढ़ा है? जानते हो खत से भाषा बाहर आकर मुल्कों की हद पार कर जाती है और सारे मजहब उसमें डूब जाते हैं। उसी भाषा की बाढ़ में से औरत की जात और मरद का करम निकलकर रेत में चलते हुए अपने पाँवों के निशानों को बनते-मिटते देखते हैं।

प्रकृति के कटोरे में वसंत ने सात रंग घोले हैं। उन रंगों में पंख लग गए हैं। वे पखेरू डाल-डाल, फुनगी-फुनगी उड़ बैठे हैं। एक प्यास जगती है और उन फूलों के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रस को रंगसहित पी जाना चाहती है। एक ऐसी प्यास जो आदिबिंदु से फूलों की चाँदनी को पीती आ रही है और फिर भी पीने की प्यास रहती है। प्यास अपने इस आदि धर्म को पहने हुए कभी वार्सतिका में और कभी शारदीया में आदिम तोष को खोजती रहती है। उस अमित तोष की चाहत में तेरी ही तो चाहत है। कितनी बार मौसम की खाट पर फागुन ने करवटें बदली हैं। कितनी बार धरती के चाक पर मिट्‌टी के लोंदे-से बदन चढ़े-उतरे हैं। कितनी बार काले कोस से चलकर आती हुई प्रतीक्षा थककर चूर-चूर हुई है। कितनी बार यह देह हरी दूर्बा-सी बिछ-बिछ गई है।

खंडहरों की दीवार पर रही घास पर एक फूल खिला है, उसमें वसंत की पूरी नदी आकर समा गई है। एक चिड़िया अपनी चोंच में तिनका दबाकर घोंसले की ओर उड़ चली है। उसे घोंसला पूरा करना है, क्योंकि वसंत की एक चिंगारी उसके पेट में सुलग रही है। इसीलिए उसकी उड़ान में वैदिक छंद की लय है। कौन जाने कितना मुश्किल है पेट में एक खूबसूरत स्वप्न को पालना! अंग जलता है तथा हड्‌डियाँ सुलगती हैं और वक्त का मेहमान पलकों की टहनियों को चूमता है, तो पूरी देह मेंहदी-रची हथेली हो जाती है। तब हाथ की लकीरों में नसीब, प्यार के हरफ लिखता है। सारा शरीर चैत की पूनम-सा श्वेत हो जाता है। सारी किश्तियाँ बेपतवार अथाह जल की सतह पर तैरने लगती हैं। उन्हीं किश्तियों में बैठकर हुस्न और इश्क राँझे को याद करते हैं और कभी हीर को। और चाहते हैं कि कभी किनारे न मिलें। बस, जल पर बदन तैरते रहें। क्योंकि किनारे मिलते हैं तो नसीबों का बँटवारा शुरू हो जाता है। जबकि नसीब बाँटे नहीं जाते, भोगे जाते हैं। इसलिए चिड़िया चोंच में तिनके को दबाकर भविष्य की बही में वर्तमान को दर्ज कर रही है। उसकी एक चहक पर बरसों के कान खड़े हो रहे हैं। चिड़िया की चाह है कि सूरज के टूटने से पहले एक पूरा वसंत उसके नीड़ में चहक उठे।

उम्र की किताब में बस किसी का नाम लिखा है, लेकिन इसके पन्ने इतने पतले और जर्जर हैं कि एक तेज हवा का गैर जिम्मेदार झोंका उनको फाड़कर उड़ा ले जा सकता है। ये पन्ने किसी के हाथ की छुअन पाकर अपनी सीवन और जिल्द से जुड़े रहेंगे। इन पन्नों पर लिखे हरफों को पढ़ो, तो एक सूनी और चाहतों से भरी जिंदगी के ठहरे क्षणों का सच मौन बैठा दिखाई देगा। इस किताब में अनेक सदियों की हलचलें नज्मों में तैरती मिलेंगी। इन पन्नों की छाती पर रोज अँधेरा उतरता है। अब तो अँधेरे से भी प्यार हो चला है। क्योंकि काली रातें बीततीं हैं, तो पीले दिन उगते हैं। छाती का जो अँधेरा बहुत कठोर और निष्ठुर है, उसकी चट्‌टान पर भी कई बार वसंत खिलता है और किताब के कोरे पन्ने पर किसी नाम का कोई संबोधन लिखा जाता है।

जब कभी आदिम प्रिया, अनादि प्रिय को वासंती गलियों में टेरती है, तो पलकों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
की टहनियों पर आँसू के फूल खिल जाते हैं। मिट्टी के चूल्हे में इश्क की लकड़ी सुलगती है। मिट्टी की हँडिया में दिल चावल सरीखा चुड़ने लगता है। नेह से राँधे हुए चावल सरीखे दिल की महीनता में एक नाजुक-सा स्वाद बसा है, जिसे जिस्म की आग शहद-सा चाटती रहती है। उसे पाने की यह भूख बहुत पुरानी है, जब धरती ने अन्न का दाना उपजाना शुरू नहीं किया था। जब फसलों के नाम नहीं थे। सभ्यताओं के विद्यालयों की भाषा का जब जन्म नहीं हुआ था। मजहबों की हरी-पीली लकीरें किसी के माथे पर नहीं खींची थीं। भीतर थिरकती-सी छाया में इस भूख का जन्म होता है, जिसे मधुलिका धुंध की चादर ओढ़ाती है और वसंत इसका पोषण करता है।

तुम्हारा-मेरा रिश्ता एक लोरी का है। एक जीती-जागती आवाज गर्भ की पीड़ा में गुनगुनाती है। वेदना से ही तेरी-मेरी मोहब्बत के गीत की पहली सतर का जन्म होता है। हसरत के धागे मिलकर एक जिंदगी बुनते हैं। लोरी की पंक्तियाँ आँगन में मिट्टी का माथा चूमती हैं। प्रभाती की पायल बज उठती है। प्रभाती की किरणों की रोशनी में कोख का रिश्ता नयी सुगंध पाता है। बिरहा के घर बधाई बजती है। माला के मोती पुराने धागे के टूटने से बिखरने ही वाले थे कि हथेलियाँ कटोरी बनकर उन्हें झेल लेती हैं। लोरी के शब्दों में महक बँध जाती है। लगता है कि आदिम संगीत का कोई सूत्र, कोई सिरा पकड़ में आ गया है। मिट्टी में कुछ सरसराहट-सी हो रही है। हवाओं की सीटियाँ बजने लगती हैं। कलियों ने पाँखें खोल ली हैं। चिड़ियों ने पंख फैला दिए हैं। कान बहुत पुराना नाद पहली बार सुन रहे हैं। अनहद नाद से भी पुराना कुछ सुनाई दे रहा है। एक पुरातन और सनातन संगीत लोरी में बज रहा है। पृथ्वी का पहला गीत होंठ गा रहे हैं। (जिसमें शायद संगीत तो था, पर सप्तसुर नहीं थे।) यह प्रकृति का राग है जो पहली वेदना से लेकर आज तक बज रहा है। जन्म-जन्मांतर से भटकती लय अपना आदि-अंत ढूँढ़ने लगती है। पर कब कोई रोशनी के झरने का आदि—अंत पा सका है?

विचार आता है कि वसंत का आना न तो कोई आश्चर्य है और न ही उल्लास। यह तो प्रकृति का आदिधर्म है। डालियों और लताओं से फूलों का गुँथ जाना ही तो हवन की अग्नि का जल उठना है। हमारी देह में भी वसंत फूटता है। हमारी अंतर्कथाएँ ऋचाओं-सी उच्चरित होती हैं। मुख से निकला किसी का नाम मंत्र-सा लगने लगता है। हवन-अग्नि की ज्वालाओं में देह गल जाती है। अस्तित्व बचा रहता है। यह यज्ञ हम अपनी धर्म-कथा की अनवरतता के लिए ही तो करते हैं। जब जिस्म वसंत को बाहुओं में कस लेता है, तब रोम-रोम से सैकड़ों अग्नि-शिखाएँ एक साथ निकलती हैं और एक अनुष्ठान अपने धर्म में अंतर्ध्यान हो जाता है। रूह की पवित्रता के चरणों में सारे मंत्र अर्पित हो जाते हैं। कोई धर्म, रूह की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
पवित्रता से बड़ा नहीं होता। रूह की पवित्रता से बहुत बाद की रचना है—मज़हब। कुदरत की कायनात में सब स्वतंत्र हैं। स्वतंत्रता के भीतर भी कुदरती अनुशासन का महीन तार पिरोया हुआ है। कुदरत का करिश्मा है—यह तन। यह ज़िंदगी। वसंत का आना इस ज़िंदगी की एक खामोश हकीकत है। एक मज़हब है, जिसे यह जिस्म सदियों से पहनता आ रहा है। समाज के मज़हब तो बहुत बाद में बने हैं।

जिस्म के घाव हों तो तुम्हें दिखाऊँ, पर दिल के जख्म कैसे बताऊँ? ये जख्म उस जंग का परिणाम हैं, जो सबसे पहले अपने आपसे लड़ी है। पता नहीं पाप-पुण्य सरीखा कुछ होता भी है या नहीं, परंतु किसी के चले जाने पर जिस एकांत से आहत होना पड़ा, उसका अँधेरा बहुत खौफनाक और हाड़ तोड़नेवाला है। उस अँधेरे से कितना लड़ना पड़ा है। काराएँ, जंजीरें, शृंखलाएँ कितनी जकड़ती हैं। जिस्म का एक घाव उघड़ता है और सपने का एक टुकड़ा उस पर मरहम लगाता है। युद्ध, लगातार युद्ध में कितना कुछ पुराना धूल चाट रहा है। नये सपने पंख खोलते हैं, कि वज्र-प्रहार शुरू हो जाता है। अपनी पहचान को बचाने की फिक्र में छाती दाई बन जाती है। शरीर की सुराही में अमृत की एक बूँद गिर जाती है और मेरी छाती की दाई उसी की परवरिश करती रहती है। इस बूँद को सूखने से बचाना कितना मुश्किल है! इसे बचाने में एक मुकम्मल जंग लड़ी है। वसंत जख्मों पर फाहे रख देता है, तो फिर से जीने-लड़ने की हसरत जाग पड़ती है। यह क्रम सृष्टि के पहले दिन से जारी है। महाभारत और ट्राय के युद्ध तो बहुत बाद में हुए हैं।

प्रकृति को वसंत उपहार में मिला और जिंदगी को मिला खूबसूरत तोहफा। जिसका नाम है—इश्क। इश्क क्या होता है, यह कोई एकाध जान पाता है। जिसने जाना वह बखान नहीं कर सका, पर जिसकी भी ज़िंदगी में यह इश्क उतरा है, उस पर आसमान से रहमत बरसती है। ज़िंदगी की थाली में जैसे नीले सपने का टुकड़ा रख दिया हो। काया की इज्जत और आबरू उस नीले सपने की रोशनी में नहाती रहती है। धरती की नंगी देह पर कोई लकीरें खीचता है और लकीरों के दोनों सिरों पर चाँद और सूरज लटक जाते हैं। इश्क की आग से बर्फ पिघलती है और उसमें हिरोशिमा डूब जाता है। सारे एटम बम गीले होकर निष्क्रिय हो जाते हैं। मज़हब और सियासत के लाखों मील लंबे फैले रेगिस्तान में जलते हुए पाँवों में इश्क मरहम लगता है। मिट्टी की देह सार्थक होती है और आकाश की मुट्ठी में एक टुकड़ा वसंत आ जाता है। प्रकृति और पुरुष की यह प्रेम-कथा दुनिया की सारी प्रेम-कथाओं से बहुत पुरानी है। ये इश्क और वसंत न होते तो क्या पलकों की टहनियों पर फूल खिलते? उम्र की कोठरी में क्या कोई दीया बलता? रात गलने लगी है। भोर होनेवाली है। चिड़िया के घोंसले में वसंत चहक उठा है। ❑

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बचा लें थोड़ी-सी धरती, थोड़ा-सा आकाश

देशों की सीमाएँ गर्म हैं। कुबैत के कुँओं में पानी नहीं, आग विद्रूप हँसी हँसती है। एक वनैला अफगानिस्तान की गुफाओं-पहाड़ियों में अपनी खीसें घोंपता है। कलाकार की छैनी-हथौड़ी बुद्ध की प्रतिमा के पास टुकड़े-टुकड़े होकर दो-दो आँसू रोती है। पूरा विश्व मौन है। पेण्टागन भू-लुण्ठित अपनी ही चौधराहट पर बौखला रहा है। अखिल ब्रह्मांड में आकाश की छायी निरभ्रता के बीच मानव निर्मित सैकड़ों यान, ग्रह, उपग्रह धुँए की उल्टी कर रहे हैं। नभ के शुभ्र वस्त्र कालिख से धुँआ-धुँआ हो जाते हैं। पक्षी साँस कैसे लें? पेड़ अपनी प्राण वायु कहाँ से प्राप्त करें? नदियाँ अपने आत्म संचयन को कैसे निर्मल रखें? आदमी के फेफड़ों की दीवारों पर कौन विनाश के नारे लिख रहा है? सबको जब जानते हैं। मजे की बात है कि कोई चोर को पकड़ नहीं पा रहा है, क्योंकि प्रत्येक का हाथ एक-दूसरे की जेब में डला हुआ है। ऐसे समय में जो हाथ स्वतंत्र हैं और कर्म-संस्कारित हैं, उन हाथों से बचा ले मुठ्ठी भर शांत और नीला आकाश।

हवा बहती है तो धड़कनें चलती हैं। जंगलों में जब हवा गूँजती है तो दिशाओं की वीणाएँ बजने लगती हैं। जंगल के जर्रे-जर्रे से संगीत फूटता है। घाटियों में कोई पशु, कोई पखेरू अपने जीवन के लिए संघर्ष कर रहा है। हवा आती है उसकी साँस बन जाती है। उसकी साँस बंद होती है तो लगता है पूरे जंगल की हवा रुक गई है। एक संघर्ष अपने रास्ते पर तड़प-तड़पकर मर चुका है। वैसे पूरी प्रकृति संघर्षमय है। यहाँ प्रत्येक प्राणी दूसरे को अपना खाद्य बनाता है और प्रत्येक दूसरे से अपने रक्षार्थ संघर्ष कर रहा है। मारने का संघर्ष। बचने का संघर्ष। इसके बीच में चल रही है हवा। बह रहा है पवन। सरक रही है वायु। फेफड़ों में जाकर हुलस रहा है समीर। हवा नहीं होती तो दुनिया मिट्टी का ढेर होती। रेत का ढूह होती। गैस का समंदर होती। या कुछ और होती। पर आवाजों से भरी जिंदगी न होती। धड़कनों से खेलती उम्मीदें नहीं होतीं। हाथों की रेखाओं का भाग्य से मिलान नहीं होता। खूबसूरत स्वप्नों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से भरा संसार नहीं होता। साँझ-सबेरे के गीत नहीं होते। हरी घाँस पर क्षण भर ठहरी बूँद नहीं होती। इससे पहले कि हवा को कोई चुरा ले। कोई संपूर्ण वायुमण्डल के गुब्बारे में मौत भर दे। कोई कण-कण पर विनाश लिख दे। हम बचा लें साँस भर वायु। चुटकी भर पवन।

पहली चिन्गारी सिलगी थी तो सभ्यता का नया अध्याय शुरू हुआ था। सभ्यता की राह में आग की प्राप्ति मनुष्य की आँखों में चमक बन कौंधी थी। आकाश ने बादलों की माचिस में से बिजली की अनगिनत कड़ियाँ सुलगा-सुलगाकर धरती पर फेंकी थीं। आज भी वह ऐसा करता है। माँ ने उसी आग को चूल्हें में जलाकर ममता, पेट और जीवन के रिश्ते तय किये हैं। माँ ने चूल्हा बालकर केवल पेट और प्रजनन को ही नहीं चुड़ाया, बल्कि भोजन की गरमाहट और ममता की शीतलता से संस्कृति की 'सौढ़ सारी' है। (बच्चा-जच्चा की देखभाल की है) एक नेह दीप देहरी पर अपनी प्रकाश आभा में घर-आँगन को जगमग करता रहा है। एक आग पीर-सी पिघलकर दरिया बन गई है, उसमें अनगिनत हीर-राँझा डूबते रहे हैं। एक बेहूदी चिनगी मशाल में से निकलकर एटम बम में दुबक गई है। उस एटम में से करोड़ों ज्वालामुखी एक साथ फटना चाहते हैं। यदि ऐसा हुआ तो कोई दीया बालने वाला भी नहीं बचेगा। एटम की आग का सत्यानाश हो जाए। एक मद्धम-सी चिन्गारी चूल्हें की और अकंपित लौ दीपक की जलती रहे, इसलिए हम बचा लें-चकमक पत्थर। थोड़ी-सी रुई। जरा-सा स्नेह।

धरती पर पहाड़ इच्छाओं की तरह हैं। उनसे निकलती हैं-कर्म की नदियाँ। ये नदियाँ कर्म सरीखी धरती पर बह रही हैं। नदी-जल में आकाश की अरुणिमा बेला में ज्ञान डुबकी लगा रहा है। ज्ञान-इच्छा-कर्म की त्रिवेणी सृष्टि का उत्कर्ष-पथ रच रही है। नदी-जलों में शिव साकार हैं। नदी-जलों में प्यास अमर है। नदी-जलों में असंख्य समुद्रों की जिजीविषाएँ पत्थरों पर कामनाओं के नारियल फोड़ रही हैं। नदी-जलों में अनुष्ठान संपत्र हो रहे हैं। नदी-जलों में तीर्थ उजले-उजले होकर जगत को उजला कर रहे हैं। नदी जलों में महाप्रलय के बाद का सर्जन झिललमिला रहा है। नदी जलों में फसलों के डिम्ब फूट रहे हैं। नदी जलों में संस्कृति के युग रात-दिन स्नान कर रहे हैं। नदी-जलों में खड़े होकर शाश्वत प्राण, सूर्य को अर्ध देते हुए गा रहा है-पृथ्वी शांत हो। अंतरिक्ष शांत हो। वनस्पति शांत हो। सब शांत हो। अखंड शांति की लता धरती से उठकर आकाश छू लेना चाहती है। इन्हीं सबके बीच एक वनमानुष आकर नदी जलों में मल-मूत्र कर रहा है। नदी जलों में कारखानों का नरक घोल रहा है। नदी जलों को बाँध रहा है। नदी-जलों को जल नहीं, रुपया-पैसा समझ उनकी ओर मांसाहारी की तरह देख रहा है और हम किनारे खड़े-खड़े पूरे नदी-जलों में असंख्य

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
कीड़ों को कुलबुलाते देख रहे हैं। हम बचा लें झारी भर निर्मल नीर। गागर भर जल। घूँट भर पानी।

धरती की कोख में बीज अँखुवाता है। सघन छाया धरती पर ईश्वरकृपा-सी फैल जाती है। माटी की ममता गर्व से भर जाती है। पूरी धरती की सतह पर जीवन के रंग बिखर जाते हैं। मिट्‌टी का एक ढेला चार-बूँद जल का स्पर्श पाकर अपने में पूरी वर्षा, शरद, वसंत को अर्थ देने हेतु तत्पर हो उठता है। मृगशिरा नक्षत्र में पड़ी बूँदों में जन्मोत्सव के प्रसंग लिखे जाने लगते हैं। मघा में धरती अघा जाती है और कार्तिक की चाँदनी देखते-देखते नदी के जल में ब्रह्ममुहूर्त में स्नान कर शुभ्र ज्योत्स्ना बन जाती है। कवि गा उठता है—'शस्य श्यामला भूमि-माता तेरा वंदन, तेरा अभिनंदन'। उसी भूमि पर जब हिरोशिमा और नागासाकी, पेंटागन और कारगिल सिसकियाँ भरता है, तो कान के पर्दों से करुणा का शीशा पिघलकर बह निकलता है। एक अछूतकन्या-सा धरती का टुकड़ा अपनी उर्वरा शक्ति के नाश के कारण अभिशप्त हो जाता है। क्या धरती अभिशप्त होने के लिए बनी है? बरसों-बरस बाद उसी मिट्‌टी पर कोई नन्ही शाख लहलहाती है। फूल खिलता है। खेतों में डाले जा रहे रासायनिक खादों से एक बार धरती फिर लवणाधिक्य से भर जाती है। समय है कि बचा लें। हम एक मुट्‌ठी पवित्र मिट्‌टी। बचा लें सौंधी गंध वाली भूमि।

पत्ता टूटा डाल से और उसे बकरी खा गई। पेड़ उखड़ा जड़ से और उसे पेट खा गया। बीज गिरा भूमि में और उसे होलगी-काबर खा गई। सपनों सरीखे लहलहाते जंगल लौह युग के हाथों के उस्तरे से केशों की तरह कटे और पहाड़ों-टेकड़ों को देखो तो चिक्कन टाल हो गए। यह होना ही है। इसे कैसे और कौन रोक सकता है? जब अव्यवस्था की छिनाल ही अन्याय को गर्भ में पाल रही हो। इसकी परवाह सात समंदर पार से घोड़े पर सवार होकर आता हुआ कौन राजकुमार करेगा? अब शायद कोई कल्की अवतार नहीं होनेवाला है। हाँ, धरती पर की वनस्पति और औषधि के वंशजों के समूल मर जाने की स्थिति में उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रव की बर्फ पिघल रही है। ग्लेशियर पिघल रहे हैं। महाप्रलय और कुछ नहीं, शायद तापमान के बेतहाशा बढ़ने से ध्रुवों की बर्फों के पानी होने से उत्पन्न पृथ्वी की डूब का ही दूसरा नाम है। पृथ्वी के होने का अगला क्रम वनस्पति-औषधियाँ हैं। उनके न रहने पर क्या हम रह पाएँगे? हमारी यात्रा सितारों के साये में शुरू हो, उसके पहले बचा लें हम—तुलसी-दल। वट का बीज। पीपल-पात। नीम की छाँह।

आदमी दिन-रात उन्नीस मुखों से सृष्टि को चर रहा है। पाँच कर्मेंद्रियों—हाथ,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पाँव, गुदा, उपस्थ और वाणी, पाँच ज्ञानेंद्रियों—कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका, पाँच प्राणों—प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान तथा चार अन्तःकरणों-—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार से पल-पल जगत में कर्म करते हुए भोग रहा है, तथा तिल-तिल मिट रहा है। पर अघाता नहीं। मनुष्य खूब खाता है, गला फाड़कर घोरता है और टाँगें पसारकर सोता है। औषधि से बना है—अन्न। अन्न क्या करे? इसी अन्न के विषय में भृगु ने तप करके जाना था कि अन्न ब्रह्म है। अन्न की निंदा न करें। अन्न का अनादर न करें। वही अन्न गोदामों में सड़ रहा है। वही अन्न तराजू पर तुल रहा है। वही अन्न कीटनाशक दवाओं से इंजेक्ट किया जा रहा है। अब रामजी की चिड़िया, रामजी का खेत, भर-भर पेट चुगने नहीं आती। नरसी मेहता का खेत का मांडा टूट गया। आछे दिन पाछे चले गए। अब कोई चिड़िया खेत की तरफ नहीं आती। अन्न बढ़ा। चिड़िया घटी। अन्न बढ़ा पर भूख भी बढ़ी। पर कोठी का अन्न घर से चला गया। पेटेंट-गैट का घुन साबुत अनाज को खा गया। हमारी अंटी में से लाल खिसक गया। इसके कि पहले सारे अनाजों को खोटी नीयत चाट जाए; हम बचा लें—झोपड़ी के कोने में रखी पुरानी मटकी में गरीब किसान के हाथों गहाई (निकाली) हुई थोड़ी-सी धान। थोड़ी जुआर। लौकी का बीज और पस-भर गोबर।

चलती रेलगाड़ी में से व्यक्तियों को मूँगफली के छिलकों की तरह फेंका जा रहा है। हिरणकश्यपु ने जलाई थी होली। उसमें पाप जलकर राख हो गया था, पुण्य बच गया था। लाक्षागृह में लगाई आग कौरवों ने। उसमें अनीति की इमारत ही ईर्ष्या की लपटों में पिघलकर ध्वस्त हो गई थी। नीति भूमिगत रही और सत्यनिष्ठा की धज उड़ती रही। साठ भार सोने में हरिश्चंद्र बिके। मणिकर्णिका घाट पर काशी में आज भी चिता की अग्नि शांत नहीं है। जलती आग और ताजा शव संसार के चक्र का सत्य और गति की निरंतरता का कुंभ सिर पर धारे हुए हैं। अमृतकुंभ से बूँद टपकती है और गंगा, क्षिप्रा और गोदावरी के तटों पर पुन-पुनः अमृत की चाह जागती है। पता नहीं नदी—जलों में डुबकी लगाकर कितनों की प्यास बुझी। कितनों के हाथ मोती लगे। कितनों को जीवन के अर्थ मिल सके और कितनों ने हर की पौड़ी पर बैठकर अपने भीतर देवभूमि का संगीत गाया? हम नहीं जानते। लेकिन खबर मिली है कि दंगों में आदमी को जिंदा जलाया जा रहा है और अमृत की तलाश करते-करते आदमी का संपूर्ण खत्म हो चुका है। खंडित बोध वाला आदमी भटक रहा है—बदहवास और स्वयं में आकुल-आतुर। हम हो जाएँ नीलकंठ। बचा लें अमृतकुंभ। बचा लें एक घूँट जीवन-रस।

ब्रह्म की ईक्षण शक्ति सुषुप्त प्रकृति में गति उत्पन्न करती है। गति ही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महाशून्य में आकाश रचती है। आकाश से वायु और वायु के घर्षण से अग्नि पैदा हुई है। वायु और अग्नि की गतिमयता से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से ओषधि, ओषधि से वीर्य और वीर्य से मनुष्य पैदा हुआ है। पर आज इनमें से कोई तो बेखरोंच बचा नहीं है। पर इन सबके लिए भी रोना कोई मनुजता है? एक चक्र है, जो चल रहा है। यह रोके भी नहीं रुकेगा। यह सब होना ही है। तब भी मनुष्य होने के नाते जी में आता है कि हम बचा लें अपने भीतर एक सुंदर-सी बूँद और उसे सुरक्षित रख लें हाँडी में; अगले मनु के जन्म की प्रतीक्षा में।

उम्र का पहाड़ चढ़ते-चढ़ते सूरज ढल गया है। चाँदनी की उज्ज्वल बिछात पर कोई तारों के फूल बिखेरनेवाला है। आकाश के गुंबद पर कोई अनजान पक्षी अजीब-सी आवाज कर रहा है। हर क्षण घड़ियाल बजता है। पक्षी पंख फड़फड़ाता है। चोंच तेज करता है। नजर दूर तक फेंकता है। कोई फूल अपरिचित मुट्ठी में कैद होकर खुशबू खो देता है। पका फल झाड़ से टपकता है। धरती का एक कण धूल बनकर अंतरिक्ष में खो जाता है। पत्तों की हरियाली रोती है। वन की कोयल कूकती है। आकाश का शून्य पिता-भाव से भर जाता है। वसुंधरा की गोदी से मोती-माणिक्य निसट जाते हैं। पेड़ों पर लटकी हुई हरी-हरी रोटियों पर पोपट चोंच मारता है। काल मणिधर फन फैलाए उम्र की डाल पर लटका है। ऐसे में मन करता है कि हम मन भर द्वापर की वंशी-धुन बचा लें। हृदय-भर देख लें लीलामय को। पा जाएँ पूर्ण पुरुष को।

❑

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सपनों से झाँकती नयी सदी

अखबार पढ़ते हुए शब्दों में भीतर से सपने जागते हैं। अखबार के पन्ने हत्या, लूट, खून-खराबा, सीमाओं के चेहरों पर लहू के धब्बे और युद्ध की खरोंचों से पटे हुए हैं। उन्हीं खबरों के बीच एक खबर उदास और बदहवास चेहरों पर से धूल पोंछने की भी है। प्राची की पाँखुरी पर एक बूँद चमकती है और आकाश का पूरा श्यामपट पीताभ और स्वर्णाभ हो उठता है। पक्षियों की उड़ान में नयी सदी के सपने आकार लेते हैं। पहाड़ियाँ जागती हैं और नदियाँ गाने लगती हैं। खेतों में हल की फाल धँसती है और सपने फसलों में भूख की तृप्ति बनकर लहलहाने लगते हैं। कैलेंडर का एक पन्ना क्या फटता है कि उम्र के वृक्ष का एक पत्ता झर जाता है। दीवार पर पुराने की जगह नया कैलेंडर टँगता है, तथा पिछली सदी का विराग खत्म और नयी सदी का राग बजने लगता है। बेला की गंध से नाक अपरिचित-सी होनी लगी है। जीभ का स्वाद न जाने कौन ठगवा चुरा ले गया है। रातों की नींद कहीं गिरवी रखी है। सपनों की झोपड़ी में सेंध लगी है। तब भी सपने हैं कि सपने हैं।

सपने देखना और न देखना मनुष्य के वश की बात नहीं है। कभी-कभी हम चाहते हैं कि कोई सपना न आए। हम अपनी नींद सोएँ और अपनी नींद जागें। उस नींद में कोई सपना खलल न डाले। पर ऐसा नहीं होता। सपने आते ही हैं। लगता है कि ये नींद की दुनिया के खूबसूरत और भयावह बाजार हैं। ये नींद की दुनिया की शायद सामान्य और नामालूम-सी घटनाएँ हैं। नींद में भी हमारे होने का जीवित प्रमाण हैं कि हम सपने देखते हैं। चिरनिद्रा में चले गए व्यक्ति को कोई सपना नहीं आता। सपने आदमी की नींद में जागृति का बिंब हैं। सपनों को लेकर जरूरी नहीं कि हम बड़े गंभीर किस्म के हो जाएँ या दार्शनिक बन जाएँ। क्योंकि सपने देखना इतनी ही सहज क्रिया है जितनी कि डाली पर फूल का खिलना। कई बार लगता है कि सपने यदि नहीं होते तो हमारे सोच और कार्य की दिशा क्या होती? वे रेखाएँ क्या होतीं, जिनके सिरे पकड़कर हम शताब्दी की जमीन को नाप सकने की क्षमता रखते हैं। कभी-कभी यह भी लगता है कि बिना सपनों के हमारे सोने का, हमारी नींद से जागृति का कोई अर्थ भी होता?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक सपना टूटता है और मैं जाग जाता हूँ। शताब्दी की कई भोरें और कई संध्याएँ आँखों में उतर आती हैं। यह सपना उपनिषद के ऋषि का देखा हुआ नहीं है। यह गोस्वामी तुलसीदास के शिव का भी अनुभव नहीं है कि जिसमें वे कहते हैं—'उमा कहहुँ मैं अनुभव अपना, सच हरि भजन जगत सब सपना।' यह दार्शनिक बात हो गई। यह सपना बीती हुई शताब्दियों के अनुभवों से संपन्न अवचेतन द्वारा नयी सदी को देखने का है। जिसे कोई ऋषि, कोई देवता नहीं देख रहा है। बल्कि एक निखालिस मनुष्य देख रहा है। सपने देखना याने जिस जगह अभी हैं, उस जगह से आगे बढ़ने की लकीरें खींचना है। उन्हीं लकीरों पर चलते-चलते लीक का निर्वाह करते हुए भी अलीक हो जाना है। भवानी प्रसाद मिश्र कहते हैं—'कुछ लिखकर सो, कुछ पढ़कर सो, जिस जगह जागा है तू, वहाँ से बढ़कर सो'। सपने निरंतर आगे बढ़ने की हौंस जगाते हैं। जो सपने निराशा की छाया और भयावहता की दहाड़ भरे होते हैं, उनसे भी उबरने की एक सोच-समझ व्यक्ति जागने पर तय करता है। शताब्दी का सपना केवल हाड़-मांस का नहीं है, उसमें अनगिनत यंत्र, तंत्र और जंतर-मंतर भी नहीं हैं। नदी के जल पर बहते हुए फूल को तो पकड़ सकते हैं, परंतु चेतना के प्रवाह में बिछलते स्वप्नों को कैसे पकड़ा जा सकता है? नयी सदी है कि आ धमकी है और सपने देखना जरूरी हो गया है।

एक सपना जागता है और सदी का कक्ष अचानक खुल जाता है। उसमें आदमी की कभी हँसी और कभी सिसकियाँ रुक-रुककर सुनाई देती हैं। कमरा खुलते ही एक भभका दुर्गंध लिए चारों ओर फैल जाता है। उस दुर्गंध में उस आदमी का अपाहिजपन और पौरुष दोनों की गंध-सुगंध मिली हुई है। वह आदमी देहधारी है, रोबोट नहीं। परंतु उसके शरीर की जंजीरें कभी-कभी झनझनाती हैं। सदी का कक्ष मटमैले अँधेरे-से सना-भरा है। उस अँधेरे में मिली हुई है—बारूद की गंध और अणु-परमाणु बमों से खुदी धरती की धूल और धुँआ। उसी अँधेरे कक्ष में उड़ता हुआ एक पत्र-सा कुछ दिखता है और वह आदमी उसे लपक लेता है। उस पत्र को छूते ही एक परिचित-सी हवा रोम-रोम से हृदय तक छिद्र-छिद्र होकर धँस जाती है। क्षण-भर के लिए वह भूल जाता है कि लिफाफे के भीतर 'एंथ्रेक्स' जैसा कुछ रेंग रहा है, जो दिखता नहीं, लेकिन अपनी जैविक क्षमता में वस्तुवादिता से पटे बाजार और बदहवास मनुष्य को निगलने के लिए तैयार है। पर वह यह जानते हुए भी उसको खोलता है क्योंकि आदमी के लिए 'एंथ्रेक्स' के भय से ज्यादा पागल कर देनेवाले वे शब्द हैं जो उस पत्र में लिखे हैं। प्रेम, भय को खा जाता है, और उसके बाद चट्टान पर खड़े होकर प्रेम, वंशी-धुन बजाता है। सपना साफ होता है और सदी के कमरे में छाए बादल छँटने लगते हैं। भरोसा नहीं था कि इस कदर छाए बादल इस कदर छँट

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जाएँगे। सूरज रोशनदान से झाँकता है और सौर मंडल के हिरण्य गर्भ से निकला यह भासमान सत्य चकित कर देता है। चीजें निर्मल जल के तल में पड़ी हुई साफ दिखती हैं। सदी के कमरे में स्थित आदमी अपनी आँखों का कीच पोंछने लगता है। वह देखता है उधर, जिधर रोशनदान से रोशनी आ रही है।

सपना टूटता नहीं बल्कि जुलाहे के धागे की तरह एकतानता में आगे बढ़ता है। वह आदमी लौह शृंखलाओं की जकड़ से अब बाहर है। अब सदी के कमरे में रोशनी है। कमरे के दरवाजे खुले हैं। इन सबके कारण ताजा हवाओं का एक संगीत-सा बज उठा है। उसी संगीत में बीती सदी का विराग और नयी सदी का राग बज रहा है। नयी सदी के राग में वानस्पतिक दुनिया का हरापन कोंपलों में तब्दील हो गया है। यह प्रक्रिया सदी के कक्ष में बार-बार चक्कर लगाते हुए उस आदमी की आँखों में भी हो रही है। उसकी आँखों में भी कोंपलें फूट आई हैं। उन कोंपलों के गर्भ में फूल हैं। फूलों में बसे हैं नयी सदी के स्वप्न। उन फूलों वाले पौधों की जड़ों में अनगिनत पीढ़ियाँ खाद हो चुकी हैं। यही कारण है कि सदी की दुर्गंध-सने कमरे की सड़ाँध में भी नयी सदी का द्वार लताओं के वंदनवारों से सजा है। उस द्वार पर रखे हैं—कुमकुम, कलश और आम्रपल्लव। दधि, दूर्वा, अक्षत के फूलों और खीलों से आँगन का सुहाग अन्नगंधी हो उठा है। कुमकुम हल्दी-सने पाँवों के चिह्न आँगन में उचर आए हैं। एक प्रेम-कथा लिफाफे से निकलकर आँगन में अँखुवाने लगी है। पृथ्वी भागवत् कथा बाँचने लगती है। प्रकृति और पुरुष पास-पास बैठकर उस भागवत् कथा को सुनते हैं। सदी के कमरे में खड़ा आदमी औचक यह सब देखता है और विश्वसुंदरी प्रकृति की सत्ता में अपनी सत्ता का तिरोहित हो जाना अनुभव करता है। यज्ञ-वेदी से अगरूधूम उठती है और अनंत में विलीन हो जाती है।

सपने के दृश्य साफ-साफ दिखते हैं। नयी सदी का आदमी फूलों को बगीचों में और फसलों को खेतों में उगा रहा है। उसके पास अन्न कम और बारूद ज्यादा बची है, पर वह उस थोड़े-से अनाज से बहुत-से अनाजों को उगाना चाहता है। वह जान चुका है कि बारूद से आदमी मर तो सकता है, पर पेट नहीं भर सकता। इसलिए वह बचे हुए अनाजों से धरती पर आदिम गीत बोता है। उन गीतों की लड़ियाँ ऋचाएँ बन जाती हैं। सदी के कक्ष के गर्भ से गूँजता है कि 'अन्न ब्रह्म है।' उस गूँज में वर्षा की झड़ी मिलकर जयलक्ष्मी का अभिषेक करती है और पूरी पृथ्वी नवमानव के पोषण में माँ की तरह संलन्न हो जाती है। उस नवमानव के मुँह से अस्फुट शब्द फूँटते हैं—'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।' वह मानव वैदिक ऋषि की वाणी में कहता है :

निधिं बिभ्रति बहुधा गुहा वसु, मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे।
वसूनि नो वसुदा रासमाना, देवी दधातु सुमनस्यमाना।।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हे धरती! तुम अपने हृदय में जिन रत्नों, धन-वैभव, मणि-रत्न, स्वर्ण को छुपाए हुए हो, वह सब हमें प्रदान करो। हे धन रत्नदायिनी देवी वरदायिनी प्रसन्न होकर हमें अमित वैभव दो, जिससे हम सुखी और संपन्न हों।

सपने में एक लंबी लड़ाई लड़ी उस मानव ने अनाजों और औषधियों के पेटेंट से। गैट और डंकल से वह डरा नहीं, बल्कि प्रकृति की वस्तुओं पर बाजार के कसते पंजे को उसने कुचला और प्रकृति की वस्तुओं को बाजार से निर्भय किया। नयी सदी में नवमानव ने बीज बोए लेकिन बहुत-से पुराने बीज खोए भी। हुआ यह कि विश्वविद्यालयों से समूह के समूह खो गए उन बीजों की तलाश में निकल पड़े। प्रकृतिदत्त औषधियों की खोज में भटकने लगे। तो बहुतकुछ ऐसा हाथ लगा जो सदी की नयी संरचना के लिए साफ्टवेयर का काम करता है। धूल, धुँआ, युद्ध, नंगापन, शोर और अलगाव के बीच नवमानव ने जाना कि पत्र पर ठहरी हुई ओस की बूँद का मोल क्या है? यह भी जाना कि रिश्तों के धागे में गुँथे हुए फूलों का मान क्या है? और यह भी जाना कि प्रतिमाओं को खंडित करने से कला खंडित नहीं होती है बल्कि धर्म का अंधापन ही गहराता है। इसीलिए नयी सदी का मानव सूर्योदय की वेला में आँगन में कुमकुम, कलश रख अक्षत दूर्वा का आह्वान करता है और खेतों में उस ब्रह्म का रोपण करता है, जो कहीं अन्न, कहीं प्रसन्नता, कहीं तृप्ति, कहीं संपन्नता और कहीं संतुष्टि के रूप में धान्य की बालियों में संभावना बनकर झाँकता है। तब एक सपना सच होता-सा लगता है और सदी का विषाद धुल जाता है।

सपने में बोले गए शब्दों की सत्ता मानव के हृदय में समा जाती है। जो बोला गया, गाया गया, उससे मन की ऋतु बदल जाती है और वह शब्द अपनी अनंतता में अक्षुण्ण हो जाता है। संचार क्रांति और सूचनाओं के विस्फोट के बीच भी सपने में शब्द अपनी सत्ता के साथ अखंड बचा रहता है। संचार क्रांति के शोर और सूचनाओं के विस्फोट की छाया में ज्ञान की आभा दब-सी जाती है, और पिछली सदी यह मान लेती है कि सूचनाओं की प्राप्ति ही ज्ञानप्राप्ति है। यह मनुष्य के अनुभव को बहुत बड़ा धोखा है और बड़ी चुनौती भी है। जबकि ज्ञान तो कबीर सरीखे एकाध सूरमा को ही होता है। संचार माध्यमों की चमक-दमक में शब्द के गुम हो जाने के खतरे हैं, लेकिन सपना कहता है कि मनुष्य की वाणी और मनुष्य की लेखनी अपनी वाचिक और लिखित परंपरा में शब्द को कभी खारिज रहीं होने देगी और न ही शब्द की अर्थगर्भिता से कभी अपाहिज पीढ़ियाँ पैदा होंगी। मुद्रण की दुनिया इसलिए कायम रहेगी कि महाभारत की समाप्ति के साथ ही संजय की दिव्य दृष्टि वापस चली जाती है। वेदव्यास का लिखा ही हमारे सामने शब्द-ब्रह्म बनकर काल की अनंतता में सदियों का पथप्रदर्शन करता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नयी सदी के सपनों में ऐसा कभी नहीं घटित हुआ कि कोई वस्तु ब्रह्मांड से नष्ट हो गई हो। यहाँ तक कि ईश्वर भी नहीं। नीत्से जैसे लोग ईश्वर की मृत्यु की घोषणा कर दिया करते हैं, परंतु ईश्वर की मौत मनुष्य के हाथ में नहीं है। अरे भाई! खुद मनुष्य की मौत ही उसके हाथ में नहीं है, तब फिर निर्गुण निराकार की मौत की कौन कहे?

बात दूसरी तरफ चली गई, सपने का हाल पीछे छूट गया।

हम उस सपने की बात कर रहे हैं जिसमें संसार से कोई वस्तु खत्म नहीं होती, उसका रूपांतरण हो जाता है। दूसरी भाषा में इसे ऊर्जा का रूपांतरण भी कह सकते हैं। तब फिर धरती से किसी कौम या राष्ट्र को मिटाना खुद को खुदा बनाने की जिद में नष्ट हो जाना है। दरअसल जातीयता और राष्ट्रीयता मानव-पुतलों में नहीं, दिमागों और उनमें पनपने-पलनेवाले विचारों में जीवित रहती है। सपने निरपेक्ष हुआ करते हैं। उनका कोई धर्म, जाति या संप्रदाय नहीं होता। वे अपने वैश्विक अर्थ-विस्तार में समूह-मन के अवचेतन का बिंबग्रहण हुआ करते हैं। मनुष्य का मन सर्वत्र एक है। वेस्टरमार्क नामक विद्वान ने मनुष्य के अनेक बाह्य आचरणों के परस्पर विरोधी तथ्यों का संकलन करके यही नतीजा निकाला कि "Man, after all is a single species." सब होते हुए भी मनुष्य एक ही जीवश्रेणी का प्राणी है। ऊपरी भेद नगण्य है।

सपने में भविष्य बोलता है कि सब मनुष्य का मन सभी जगह एक है तब विश्वग्राम का अरण्य रोदन व्यर्थ खून को पानी करना है। 'ग्लोबल विलेज' में आगे चलकर 'विलेज' तो बचेगा, लेकिन 'बाजार' समाप्त हो जाएगा। सदी का स्वप्न है कि विश्वग्राम के बीच से ही विश्वमानव पैदा होगा। इस विश्वमानव की जमीन 'पदार्थवाद' से भरी हुई न होकर 'विश्वबंधुत्व' के भावों से ठोस होगी। सदी के गंदेले कमरे से हवा में तैरती हुई जो चिट्ठी नयी सदी के विश्वमानव को मिली है, उसके शब्द-शब्द से नेह के झरने फूट पड़े हैं। उनमें इच्छाओं की किरणें मिलकर इंद्रधनुष बना रही हैं। जीवन इंद्रधनुषों के रंग लेकर पूरी धरती को अन्नमय, गीतमय, तीर्थमय बना देता है। मनुष्य पिछली सदी से आगे बढ़ रहा है, पर नया विश्वमानव अपनी जड़ों की ओर लौटकर कुछ नया पाना चाहता है। यह नया संस्कृति की आँच से ऊष्मित और दीपित है। जाहिर है कि यह संस्कृति मानव-संस्कृति ही हो सकती है। ❑

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नींद उड़ गई

आकाश के काँधों पर से काली कामरी धीरे-धीरे सरककर पश्चिम की जमीन पर गिर गई और पूरब की जमीन पर एक सुर्ख फूल खिलनेवाला है। कहीं से भीमसेन जोशी की आवाज में यह पंक्ति बजती है—'सखी मोरी नींद नसाणी हो।' पंक्ति मेरे भीतर रिकार्ड की तरह घूमती हुई बार-बार बजने लगती है।

नींद का टूटना, नींद का खुलना, नींद का उचट जाना, नींद का उड़ जाना ज़िंदगी में कई-कई बार होता है। जरूरी नहीं कि नींद दुश्चिंता के कारण ही टूटती हो। यह जीवन मोतियों की हाट और चिंगारियों का मेला है। यहाँ सुख-दुःख सम पर खड़े हैं। उनके हाथों में मोहनवीणा है। उसमें से वे अपने-अपने राग निकालकर कमाल दिखाया करते हैं। यदि इन रागों की भिन्नता नहीं होती तो भी जीवन उबाऊ हो जाता। एक ही तरह की रोटी-भाजी भी मुँह का स्वाद और रुचियों का मूड बिगाड़ देती है। सोचता हूँ सोना, आराम करना अच्छा लगता है। परंतु निरंतर सोना और हमेशा आराम भी आदमी को पोस्ती बनाता है। एक ठहराव पैदा करता है। ठहराव सडाँध का संकेत है। नींद का टूटना—कई बार सोचता हूँ कि नींद नहीं टूटती तो हमारे होने का कोई अर्थ भी होता? नींद के टूटने में ही हमारा 'होना' सार्थक है।

इस समय ओसामा बिन लादेन के हाथ में 'एंथ्रेक्स' से भरा लिफाफा है। उसमें से जीवाणु मानव बम की तरह गिर रहे हैं। वे विषाणु भारतीय संसद के परिसर में आतंक मचाते हैं। बंदूकें गोलियाँ उगलती हैं। एक सरसराता सन्नाटा फैलता है। वृक्ष काँपते हैं। दो-चार पत्ते टप-टप हो जाते हैं। उस सन्नाटे के कोलाहल में से पूरा देश नींद से फट हो जाता है। उसकी नींद उड़ जाती है।

एक फूल वृंत्त पर से अकारण नोचा जाता है तो अवसाद गहराता है। दुनिया और दुनियादारी पर झुंझलाहट होती है। पतझड़ का आना। पत्तों का मर्र-मर्र स्वर से झड़ जाना। जीवन के फुग्गे का फूट जाना। यह जगत काल का चबीणा है, फिर इतनी मारा-मारी। इतना लौह-युद्ध। इतने भयंकर भूत को लादे फिरना कि कंधे घायल हो जाएँ। एक तुलसी का बिरवा भी न बचे। न शंख बचे। न बाँसुरी। न त्रेता का धनुष।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तब फिर इस दुनिया का क्या करें? ऐसी दुनिया किस काम की कि जिसके लिफाफे में प्रेम की जगह मौत निकले! नींद का उड़ जाना, मौत को भी चुनौती है।

बाँसुरी का हृदय फटा है। उसमें सात छिद्र हैं। वह गा रही है। क्योंकि उसका निर्माण ही सुरों के लिए हुआ है। पर मनुष्य की रचना युद्ध के लिए नहीं हुई है। इच्छाओं की पूर्ति के लिए संघर्ष, युद्ध नहीं है। एक सहज प्रक्रिया है। मनुष्य जिंदा है, इसका अर्थ ही होता है—सक्रियता। जन्म के साथ ही उसका कर्म शुरू हो जाता है। कर्म के बिना क्या हो सकता है? कर्म नहीं होंगे तो नींद भी नहीं आएगी।

नींद टूट गई है—कोई खुटका भीतर बज रहा है। यह ध्वनि किसी घाव के हरे होने की भी हो सकती है और घाव के भर जाने पर दर्पण में झिलमिलाते संदली-बदन की भी हो सकती है। हम उम्रभर डायरी के पन्नों पर कुछ शब्द लिखते रहते हैं और उन्हीं शब्दों के अर्थ ढूँढ़ते रहते हैं। उन अर्थों को सपनों में उँडेलते हैं और सपनों से उन्हें निकालकर अँधेरी-उजेली राहों में संग-साथ घूमते हैं। सपनों के साथ रहने पर भी मिलन की अतिरंजिता में नींद नष्ट हो जाती है और सपनों के टुकड़ों में बँट जाने पर भी नींद टूट जाती है। दोनों ही स्थितियों का अपना सुख-दुःख है। अपना-अपना वजूद है।

पर कई बार ऐसा होता है कि नींद में कृष्ण आते हैं। छींके पर हाथ पुराते हैं। सींका ऊपर है। कृष्ण छोटे हैं। हाथ छींके तक नहीं पुरते। राधा उठती है और कृष्ण को ऊपर उठाकर छींके तक हाथ पहुँचाने में मदद करती है और नींद खुल जाती है। मनोरथ का छींका धड़ाम से नीचे आ गिरता है। सारा नेह नवनीत-सा बिखर जाता है। नींद ही न रही, तो कृष्ण कैसे रहें! क्योंकि वे तो नींद के साथ ही आए थे। अब इस नींद को क्या कहें? यह प्रिय से मिला भी रही है और प्रिय को दूर भी ले जा रही है। एक घूँट अमृत पीया भी और एक बूँद छलका भी। जन्म-जन्मांतरों के नेह-छोह की बरसात-सी हो गई। फिर भी भींजने की प्यास कहाँ पूरी होती है?

हवा किवाड़ से टकराती है और कान प्रतीक्षा बन जाते हैं। किवाड़ खुलता है पर 'कोई नहीं'। तब भी कानों की प्रतीक्षा-मुद्रा समाप्त नहीं होती है। दरवाजे पर किसी की पदचाप नींद में मोक्ष को भी बिसार देती है। पूरी नींद का घर सुगंधित हो उठता है, जिसमें हजार-हजार बेला के फूल झर रहे हैं। तब ऐसा लगता है कि यह रात कभी खत्म न हो। यह नींद कभी ना टूटे। यह बंधन कभी छूटे ना। भटकते रहें इसी घर में जन्म-जन्मांतरों के लिए। यह नींद भी आत्म-सुख दे जाती है। पूरे दिन झरे हुए हरसिंगार के नीचे बैठे-बैठे तमाम मटमैले रंगों को धोकर पुनः उसी घर में लौटना कितना अच्छा लगता है।

अधकचरी नींद में हों और कोई हित की खबर सुनाई पड़ जाए तो नींद चद्दर-फाड़कर भागती है। मसलन किसी राष्ट्रीय संगोष्ठी में गए हों और निद्रालस लेटे हों,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

मित्र औचक आकर कहे कि बिदाई के समय भेंट में अटेची दी जा रही है, तो नींद
Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
सिर पर पाँव रखकर चपत हो जाती है और मित्र को झकझोरकर पूछते हैं—सच बोल रहे हो कि पुड़िया छोड़ रहे हो। नींद से लौटना याने जीते-जागते संसार में आना। इस संसार को मिथ्या या मायावी इसलिए नहीं कहना चाहते कि यह दिखता तो सच सरीखा ही है। तो इस सच्चे-सरीखे दीखनेवाले झूठे संसार में हम कई बार जागते हुए मरते हैं और नींद में जीवित होते हैं।

वक्त-बेवक्त यह नींद बड़ी ढाँढस बँधाती है। पसीने से तरबतर ज़िंदगी को छाँह चाहिए। छाँह में विश्राम की महीन घास बिछी होती है। थके हुए लम्हों में हम कुछ नहीं चाहते—बस नींद आ जाए। नींद हजार कोस की थकान मिटाती है। वह घर में घुसे हुए रोग के काले चोर को निकाल बाहर करती है। एक सुंदर दुनिया दीखती है। वह बचपन की दुनिया। वह निरूज शरीर। वह घरोंदों का खेल। वह कच्ची अमिया की चोरी। और वह लरिकाई की प्रीत। सबकुछ नींद अपनी मुट्ठी में लाती है और हमें खोलकर दिखाती है कि रंग और गंध की जिस बगिया को तुम पीछे छोड़ आए हो, वह मेरे पास है। हम उसकी मुट्ठी में से बचपन के वे रंग छीन लेना चाहते हैं। पर नींद में कैद सपनों को देखा तो सबने है, परंतु कौन उन्हें छीन पाया है?

सब काम करने के मुहूर्त होते हैं। संभवतः मरने के भी। योगी-सिद्ध पुरुष मुहूर्त ज्ञात कर देह त्याग करते हैं। संत सिंगाजी की परंपरा के एक संत ने अभी-अभी देह त्यागी। उन्होंने पूछा—कल किस समय अच्छा चौघड़िया है? परिवार-जनों ने बताया—सुबह छह बजे से साढ़े सात बजे तक। और सच कहूँ; वे सुबह सात बजे पयान कर गए। हम नहीं जानते वे कहाँ गए? उनको स्वर्ग के पथ पर कौन मिला? पता नहीं उन्होंने अवधि-निद्रा की सीमा को तोड़कर चिरनिद्रा का वरण कर लिया? अब उनकी जीवात्मा का क्या होगा? धरती की कोई स्मृति उनके साथ गई या नहीं? सबकुछ हमारी अटकलों में उलझा रहता है। प्रत्येक आदमी की चिरनिद्रा की कहानी कोई नहीं जानता। वहाँ जाकर अपनी कहानी कहने कोई लौटता नहीं। नचिकेता और सत्यवान का लौटना मिथक बन चुका है।

हम बात कह रहे थे मुहूर्त की। सोने का कोई मुहूर्त नहीं होता। नींद कोई चौघड़िया नहीं देखती है। यह जिसे आती है उसे भी देखने का मौका नहीं देती है। नींद की यह बात मुझे बहुत अच्छी लगती है कि वह पूरी स्वतंत्रता देती है। सोओ तो सोओ, नहीं तो जागते रहो। लक्ष्मण चौदह बरस नहीं सोए थे, फिर भी वे नींद का रोना नहीं रोए और न ही नींद ने उन्हें परेशान किया। पर सब तो लक्ष्मण नहीं हैं। साधारण आदमी वास्तविकता में जीता है। नींद भी जीवन की हकीकत है। लक्ष्मण इतने बरस नहीं सोकर भी परेशान नहीं हुए थे। पर साधारण आदमी को नींद नहीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आए तो दिमाग क्रोधित ततैया की तरह भिनभिनाता है और जीवन-सपाट, रंगहीन और सन्नाटा भरा हो जाता है। नींद भावों को मरने से बचाती है। अनिवार्यताएँ कभी मुहूर्त का रास्ता नहीं देखा करतीं।

बेचारा कुंभकरण यदि नहीं जागता तो कम से कम वह राक्षस की मौत तो नहीं मारा जाता। उसकी नींद का टूटना संकट का कारण बना। और कई बार नींद का टूटना इतिहास में संकटों से बचाव की ढाल बना। दोनों वास्तविकताओं के बीच खड़ा आदमी निपट अकेला है। इस हकीकत को खुद ही जीना पड़ता है। वह हमारी जिंदगी का हिस्सा है। एक ऐसा हिस्सा जिसमें निराशा की सारी बर्फ, सारी सर्दी, सारी ठिठुरन, सारी सिहरन पिघल जाती है। उसके बाद जो सुबह होती है; वह सुबह बीती सुबहों से कुछ ज्यादा ही अस्तित्ववान, मर्यादित और चटकभरी होती है।

वैसे कहा यह जाता है कि विद्यार्थी की नींद श्वान की नींद जैसी होनी चाहिए। पर मुझे लगता है विद्यार्थियों के रात-रातभर निद्रा त्याग कर अध्ययन के दिन लद गए। अब तो अध्ययन-अध्यापन के कई अत्याधुनिक तरीके निकल आए हैं। खैर ! छोड़ो ! फटे में पाँव डालने से क्या हासिल होगा ? अरण्य-रोदन से जंगल के दो-चार पत्ते और झर जाएँगे। पर श्वान की बात निकली तो प्रेमचंद की कहानी 'पूस की रात' याद आ गई। याद आया कि श्वान की नींद जैसी ही चमक नींद किसान की होनी चाहिए। हल्कू की नींद बार-बार टूटी, तो आग की खोज हुई। गरमी को जीवन के ताप से और गरम किया। फिर हल्कू जो सोया तो सारी झंझटों से बरी हो गया। खेत मिरगा चर गए। न फसल होगी, न जागने आना पड़ेगा। न साहूकार को देने हेतु कुछ बचेगा। तमाम झंझटें जागने से खड़ी होती हैं। नींद झंझटों से मुक्ति का नाम है। नींद उचटती है तो झंझटों की सुइयाँ चुभती हैं। नींद लगती है तो एक बेचैन चैन दस्तक देती है।

पर भजन में गाया जा रहा है—'सखी ! मोरी नींद नसाणी हो'। मीराबाई कहती है—हे सखी ! मेरी नींद नष्ट हो गई है। टूटी हुई नींद फिर से जुड़ जाती है। खुली हुई नींद पुनः लग सकती है। उचटी हुई नींद दोबारा जम सकती है, परंतु जो नींद नष्ट हो गई, वह कैसे बन सकती है। यहाँ नींद खत्म ही हो गई है। एक अनिवार्यता अपनी जड़ से ही उखड़ गई है। एक आत्मा भौतिकता के घेरे से ऊपर उठ गई है। लगता है जीवन इस स्थिति को पाने के लिए ही जन्मा था, लक्ष्य पूरा हुआ और विजय की घोषणा हो गई कि मेरी नींद नष्ट हो गई है। यह नींद खत्म होती है तो शाश्वत जागृति की सुबह हरसिंगार के फूलों की तरह महक उठती है। तब फिर न थकना होता है। न सोना होता है। न लौटना होता है। जागना और केवल जागना होता है।

आकाश के समुद्र में सूरज ने अपनी नाव छोड़ दी है। जल जाग गया है। किनारे के पेड़ से कोई पक्षी फुर्र हो गया है। नींद उड़ गई है। ❑

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मेरा दिल फिक्र में है

शाम के पाँच बजे हैं। यह शाम माघ की है। शिशिर की यह साँझ बादलों से घिरी है। अंग्रेजी भाषा के मोह संस्कार में रंगे हुए एक स्कूल के वार्षिकोत्सव का आयोजन होने जा रहा है। सबकी दृष्टि मंच की ओर है। इस मंच से आज 10-12 वर्ष की बालिका अपना सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करने जा रही है। इस कार्यक्रम से प्राप्त धन से वह उन बच्चों का इलाज करवाएगी, जिनके हृदय में छेद हैं। जिनकी किडनी खराब हो गई है। जिनके माता-पिता गरीब हैं। गरीबी सबसे बड़ा दुःख है। "नहिं दरिद्र सम दुःख जग माँही"। उन गरीब माता-पिता के नाउम्मीद बच्चों के उपचार में यह संगीतमय और दयामय नन्ही बालिका इस धन को खर्च करेगी। पता चला है कि अभी तक यह बालिका इस तरह के आयोजनों से प्राप्त धन से 22 बच्चों का इलाज करवाकर उन्हें प्राण-संजीवनी दे चुकी है। इस समय उसके पास 65 बच्चों की सूची है, जिनका इलाज होना है। पावन उद्देश्य को लेकर चलनेवाली इस छोटी उम्र की बड़ी बालिका का नाम है—'पलक मुछाल'।

बेफिक्री के आलम में मेरा दिल फिक्र में है। अँधेरा तंग और तेज हो रहा है। शहर की तेज़ रोशनियों में शम्माओं की लौ मद्धम हो रही है। उन्हीं शम्माओं की लौ के लिए नन्हे हाथ आहिस्ता बढ़ रहे हैं। लोगों ने स्वप्न देखना बंद कर दिए हैं। काँचघरों में रहनेवालों ने अपने घरों के कोनों में पत्थर इकट्ठे कर रखे हैं। शहर के कवियों-कलाकारों को शब्दों और रंगों से प्यार है। माँ की सिसकियों में प्यारा भविष्य पल रहा है। पिता की दृढ़ता में वर्तमान ढल रहा है। कुछ हैं जो इतिहास का अंत करना चाहते हैं। कुछ हैं जो परंपरा को ज़िंदा दफनाना चाहते हैं। कुछ लोग धरती के भूगोल से चले जाते हैं। कुछ लोग गायब कर दिए जाते हैं और उनका नाम रजिस्टर से काट दिया जाता है। राशन की दुकान पर उनके हिस्से का चावल सड़ जाता है। वोटर लिस्ट में से निकलकर उनके नाम का निशान किसी कुत्ते की अँगुली पर लग जाता है। शीशाघरों में रहनेवाले घाघों के ठहाकों से पत्थर दरक जाते हैं और खिड़की काली हो जाती है। स्कूल के मंच पर नन्ही बच्ची गाती है—"हे मालिक तेरे बंदे हम।"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

असली बात तो संवेदना की है। मरणासन्न प्राणी के लिए मृत्यु का वरदान एक आँसू, एक शब्द में छुपा है। संवेदना का एक आँसू और प्यार का एक शब्द मृत्यु को उत्सव में तब्दील कर देता है। नन्हे बच्चों के प्राणों में समाया मौत का भय गहरा रहा है। और 'पलक मुछाल' है कि उस भय की पूँछ में फटाका बाँधना चाहती है। वह चींटी के पाँवों में बँधे घुँघरूओं की आवाज सुनने की कोशिश कर रही है। उसका यह अभियान क्या उज्ज्वल भविष्य और आदर्श दुनिया का यूटोपिया प्रस्तुत करता है या जीवन यथार्थ के घनघोर की भयावह तस्वीरकशी करता है? वह प्रत्येक में बसे 'ह्यूमन बीइंग' को चिल्लाकर जगाना नहीं चाहती है, परंतु उसे महसूस करना चाहती है। वह गा रही है उन तमाम जिंदगियों के लिए जिनके संगीत के स्वर बिखर गए हैं। जिनकी साँसों की लय टूट-टूट कर जुड़ रही है। बीसवीं सदी के ढलते वर्षों में जहाँ सूर्य का अर्थ रोशनी के ढबरों में तब्दील हो रहा है। बीसवीं शताब्दी जो मनुष्य की अपराजेयताओं और अपरिमेय सर्जनात्मकताओं के साथ शुरू हुई, उसका अवसान सर्वनाशी आयुधों के हाथों होगा, किसी को कल्पना नहीं थी।

एक ज्योतिषी बिना पोथी-पत्रा के आता है। विश्व के हाथों की रेखाओं से भविष्य का नक्शा बताता है। दरअसल वह हथेलियों की रेखाओं से दुनिया के दिमाग का फितूर प्रकट करता है। 'नास्ट्रेडमस' की मुट्ठी से निकलकर इक्कीसवीं सदी का शुरुआती दौर तीसरे विश्वयुद्ध में बदल जाता है। लोहे के कई टुकड़े वैज्ञानिक के दिमाग से निकलते हैं और 'रोबोट' बन जाता है। शून्य से शुरू हुआ विकास लौह-पात पर जाकर अट्टहास करता है। बारूद, बंदूक, बम सब धरे रह जाते हैं। धरती पर रेंगनेवाले कीड़े प्रयोगशालाओं में घुस जाते हैं। बीमारी और महामारी का जश्न मनानेवाले अदृश्य कीटाणु बेशकीमती हो जाते हैं। विषाणुओं का प्रलंयकारी कुनबा बढ़ने लगता है। उनके बीच में अभय खड़ा होकर 'नास्ट्रेडमस' छह अरब लोगों से कहता है—"अगला युद्ध एशिया में लड़ा जाएगा। इसमें अत्यंत विनाशकारी 'जैविक' आयुधों का प्रयोग किया जाएगा।" आज ऐसा अंदेशा है कि इसराइल और इराक जैसे देशों के पास जैविक हथियारों का विशाल भंडार है। खास बात यह है कि ये हथियार भौतिक वस्तुओं को नुकसान नहीं पहुँचाएँगे, बल्कि महामारियों के जरिए दुश्मन देश की आबादी को समाप्त कर देंगे। ऐसे कठिन समय में एक छोटी-सी परी अनेक बच्चों की जान बचाने के लिए गा रही है :

लोग टूट जाते हैं, एक घर बनाने में।
तुम तरस नहीं खाते, बस्तियाँ जलाने में।।

हवाओं में सनसनी है। बादलों को रंज है। आकाश काली काँबल ओढ़े घोर रहा है। रोशनियों के फुंदे आकाश की खाट से लटके हैं। सर्द रातों में आकाशीय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परिंदा चिहुँकता है। एक लालबत्ती लप्प-झप्प करती गगनपथ पर बढ़ रही है। बोतलों और जारों में कीड़े कुलबुला रहे हैं। सारी प्रयोगशाला रेंगते हुए कीड़ों में तब्दील हो रही है। अमेरिका सहित बड़े-बड़े देशों की सिट्टी-पिट्टी गुम है। सारा प्रयोग आदमी के द्वारा आदमी के खिलाफ करने की अंधी आकांक्षा बन जाता है। यह सब देखकर बुद्ध उदास हैं और महावीर चुप। गांधी की नैतिकता की पूछ-परख के दिन शायद लद गए। नया मनुष्य बनाने की जो कोशिश समाजवादी विचारधारा ने की उसके गुब्बारे में नवउपभोक्तावाद ने पिन घुसा दी है। कुंभ-पर्व पर नदियों के संगम में डुबकी लगानेवाले वामपंथियों और दक्षिणपथियों की वैचारिक अहिंसा के अर्थ खोजे जा सकते हैं। वैश्विक भक्तिकाल का पुनरुत्थानवादी स्वर बीसवीं शताब्दी की ढलती वेला में मात्र नैतिक श्रृंगार बनकर रह गया। भक्तों ने गाया था—"सबै भूमि गोपाल की, जामै अटक कहाँ'। 'बैलेट बॉक्स' के निर्णयों और राजवंशों की अंधी महत्त्वाकांक्षाओं ने पूरी धरती को बपौती मान लिया। यह धरती न अपनी है न परायी। वह भूमि है। उस पर सबका अधिकार है। उसके सब बेटे हैं। उसकी छह अरब संतानें हैं। परंतु हस्तिनापुर में हम ही रहेंगे, पांडव नहीं, यही सोच दुर्मुखी है। महाभारत की भूमि मनुष्य की कुंठित जिजीविषा की विद्रूप निशानी है। हिरोशिमा-नागासाकी की भूमि का वैश्वानर अभी भी कुछ राष्ट्रों की सर्वग्रासी भूख के रूप में जिंदा है। बगल के पेड़ से कोई पंछी उड़ गया है।

मंच पर कार्यक्रम का अलग सोपान शुरू होता है। एक ओर रुक्मणी खड़ी है, दूसरी ओर सत्यभामा है। बीच में कृष्ण खड़े हैं। रुक्मणी साधारण वेश में हैं। सत्यभामा आभूषणों से लदी हैं। रुक्मणी अंतःपुर में जाती हैं। कृष्ण भी रुक्मणी के पीछे-पीछे चले जाते हैं। सत्यभामा टापती रह जाती हैं। सत्यभामा को दुःख है कि उसके पास धन है। वैभव है। रूप है। सौंदर्य है। परंतु कृष्ण हैं कि उससे कहीं ज्यादा रुक्मणी को चाहते हैं। नारद आते हैं। युक्ति की जाती है। परीक्षण किया जाता है। तुला पर एक तरफ कृष्ण बैठे हैं, दूसरे पलड़े पर सत्यभामा अपना सारा द्रव्य रख देती हैं। परंतु कृष्ण इतने भारी हैं कि सत्यभामा का धन हल्का पड़ जाता है। कृष्ण की ओर का पलड़ा जमीन से जरा भी नहीं उठ पाता। रुक्मणी की बारी आती है। रुक्मणी के पास प्रेम के सिवाय कुछ नहीं है। वह प्रेम के प्रतीक रूप में तुलसीदल को रख देती है। तुलसीदल रखते ही कृष्ण की ओर का पलड़ा हल्का होकर ऊपर उठ जाता है। कृष्ण से अधिक भारी तुलसीपत्र हो जाता है। प्रेम सबसे भारी है। भगवान से भी भारी। क्योंकि प्रेम ईश्वर को भी वश में कर लेता है। धन से सबकुछ खरीदा जा सकता है, प्रेम नहीं। ईश्वर को नहीं खरीदा जा सकता। जीवन के नाश की कीमत पर शायद धन मिल सकता है, धन की कीमत पर जीवन नहीं मिल सकता।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नाटिका समाप्त होती है। उससे निकला संदेश दर्शकों की जेबों में बैठ जाता है। घर जाते समय दर्शक उस संदेश को जेबों से निकालकर विद्यालय के द्वार पर छोड़ जाते हैं। देह-राग के गान अधरों पर नाचने लगते हैं।

मेरे दिमाग के बुद्धू बक्से में एक चित्र उभरता है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय दिल्ली की दो छात्राओं का वार्तालाप चल रहा है। एक अपनी सखी से कहती है कि हम बहुत गरीब हैं, हमारे पास सिर्फ मारूति-800 है। मेरा दिमाग सन्ना जाता है। मैं कोशिश करता हूँ; दिमाग की उस चैनल को बंद कर दूँ। परंतु मैं असफल रहता हूँ। जिसके पास सिर्फ मारुति-800 है उसका दर्द समझें या दर्शक दीर्घा में मेरी बगल मे बैठे हिंदी के वरिष्ठ कवि की आत्मिक ऊँचाई का सुख जानें, जो आजीवन साइकिल पर चलते रहे। इंडिया गेट के पास जलती हुई अमर ज्योति की रोशनी में जीवन की शाश्वतता नापें या जैविक आयुधों के भीतर बजबजाते कीड़ों के समान उफनती कुछ राष्ट्रों की कुटिल आकांक्षाएँ सहें। मनुष्य होने का अर्थ क्या है? राष्ट्र बनाने का उद्देश्य क्या है? अपने-अपने ओटलों पर बैठकर एक-दूसरे को गरियाने का तंत क्या है? सारी सभ्यता और संस्कृति के विकास का संदेश क्या है? धर्म की ध्वजवाही आखिर किसके लिए? पंथ का निर्माण किसलिए? मंदिर में शंख-ध्वनि और मस्जिद में अजान किसके लिए? बच्चे के चेहरे की हँसी क्या मारूति के नीचे दबकर चीख बन जाएगी? कोई हाथ यदि खिड़की से बाहर तितली को पकड़ने के लिए बढ़ेगा तो उस पर गोली दाग दी जाएगी? रात के अँधेरे में कोई कबीर गा रहा है—'मन फूला-फूला फिरे जगत में, कैसा नाता रे।'

सोमालिया में भूख से कितने मरे? उड़िया तूफान में कितने लापता हो गए और अभी-अभी आए गुजरात के भूकंप में कितने जमींदोज हो गए? सही आँकड़ा दुनिया का कोई कंप्यूटर नहीं बता पा रहा है। भुज और अहमदाबाद में आया जलजला विश्व के कई देशों के हाथ-पाँव सुन्न कर गया। यह प्रकृति का गुस्सा है या मनुष्य-सृष्टि की नियति? उन बुझती साँसों का हिसाब किसी गणक के पास नहीं है। आयुध फैक्ट्रियों में दिमाग सामरिक यंत्र बन गया है और वस्तुओं से सजे ग्लोबल विलेज में व्यक्ति बेभान खड़ा है। यह आदमी बाजार में अपने घर का रास्ता भूल गया है। उसे अपने घर लौटना जरूरी है।

सारा खेल तो साँसों का है। शीशाघरों में बैठे लोग अपनी हिफाजत में पत्थरों का इस्तेमाल कर रहे हैं। यह इस विज्ञान-चरम युग की बौद्धिक नादानी है। एक मासूम बच्ची मंच पर इसलिए गा रही है कि उस जैसे कई बच्चो की साँसें चलती रहें। यह दुनिया है कि करोड़ों विषाणुओं का संग्रह इसलिए कर रही है कि वे शत्रु-राष्ट्रों की जनता में उन्हें छोड़ सकें और वे विषाणु जनता की साँसों में घुसकर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महामारी का 'पॉप सांग' गाएँ। लेकिन जब तक साँस है तब तक ही आशा है। अभी मनुष्य के रिश्ते खत्म नहीं हुए हैं। मनुष्य के पसीने में घुला नमक उन कीड़ों को गला देगा। मैं महसूस करता हूँ, ढलती हुई रात की करुणा दूब पर ओस बनकर उभर आई है। पूरब के पहाड़ से रोशनी का झरना फूटनेवाला है।

❑

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हंसा कहो पुरातन बात

हंसा! कहो बात, खुटे रात। अँधेरा घना है। यह काली रात बहुत धीरे-धीरे सरक रही है। धरती की हरियाली पर कालिमा की परत जमती जा रही है। मनुष्य की साँसों में गरमी नहीं बची। एक चुप्प सन्नाटा पंछियों के परों से लेकर हवा की लहरों तक पसरा हुआ है। केवल नदी बह रही है—अपनी विरल और तन्वंगी धारा में। स्वर्णिम विहान कब आएगा?

सुनो मानुष भाई! एक पुरानी बात याद आ रही है। इस सृष्टि में समुद्र-मंथन हुआ था। सुर-असुर समुद्र को मथकर उसमें से अमृत निकालना चाहते थे। समुद्र को मथने की उद्दाम चेष्टाएँ हुईं। अमृत को पा जाने की उत्कंठा में समुद्र को मथा गया। समुद्र के गर्भ में जो कुछ था, सब ऊपर आ गया। कहते हैं एक-एक करके चौदह रत्न निकले।

श्री, मणि, रम्भा, वारूणी, अमिय, शंख, गजराज।
धनवंतरी, धनु, धेनु, शशि, कल्पवृक्ष, विष, बाजि।

अमृत सबसे बाद में निकला। उसे पाने के लिए समुद्र मथनेवालों में संघर्ष हुआ। अमृत की चाह ने सबको पागल-सा बना दिया। अमृत का बँटवारा विष्णु नामक देवता ने बड़ी चतुराई से किया, ताकि आसुरी वृत्तियों वालों को अमृत न मिल पाए। फिर भी राहु-केतु उसे पाने में सफल हो गए। कहते हैं अमृत को पीकर राहु-केतु अमर हो गए। समय आने पर वे सूर्य और चंद्र को ग्रसने से चूकते नहीं हैं।

यह मिथक आज भी अपने अर्थों में हरा है। आज मनुष्य ने अपनी प्रज्ञा को मथकर अपने पुरुषार्थ से अनेक रत्न प्राप्त कर लिए हैं। उसने आकाश की नीलिमा को भाँप लिया है। उसने अपने पंखों से गगन को नाप लिया है। वह अपार जल-सतह पर तैरा और अथाह जलराशि में उतरा भी है। उसने चुटकी में पर्वतों को लाँघना सीख लिया है। वह अपने बाहुबल से नदियों की दिशाएँ मोड़ने लगा है। उसने रत्नगर्भा धरती से मणि-माणिक्य निकाले हैं। उसने धरती की सुगंध को और उसके रस को अन्न के रूप में पा लिया है। उसने भावों, विचारों और कल्पना को कलम

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और कूँची से कला में रूपांतरित कर लिया है। वह आज अपनी अँगुलियों पर पूरे संसार को नचा रहा है। उसने महाभारत के संजय की दिव्य-दृष्टि दूरदर्शन में उतार ली है। इंटरनेट, ईमेल, पेजर और भी नवीनतम खोजों से उसने अपनी आँखों और कानों का विश्वव्यापी फैलाव किया है। कुल मिलाकर मनुष्य, मात्र हाड़-मांस का पुतला न होकर, अक्ल की सजीव प्रतिमा सिद्ध हुआ है।

हे हंसा! यह तो ठीक है, लेकिन मनुष्य ने इस मंथन में से विध्वंसक और विस्फोटक पदार्थ भी खोजे हैं। उसने परमाणु बम सरीखा सृष्टि-संहारक भी तो बना लिया है।

हाँ मनुष्य! अभी बात पूरी कहाँ हुई? समुद्र-मंथन का मिथक आज अपने अर्थ-विस्तार में पूरी तरह छाया है। समुद्र-मंथन में से वैभव की श्रीवृद्धि करनेवाले अनेक रत्न निकले। साधन और सुविधा के प्रतीक कई अनमोल और अद्‌भुत रत्न हाथ लगे। समुद्र-मंथन से ही शराब भी निकली और कालकूट जहर भी निकला। शराब तो असुर पी गए। मस्त हो गए। थोड़ी देर अपना श्रम परिहार कर पुनः वासुकी नाग की फुफकार सहन करते हुए मंदराचल से समुद्र को मथने के लिए तत्पर हो गए। पर कालकूट जहर तो शिव को अकेले पीना पड़ा। जग के कल्याणार्थ शिव ने ऐसा किया। शिव ने अपनी शक्ति से उस गरल को पचा लिया।

वर्तमान में मनुष्य ने अपनी बुद्धि के मंथन से विकास के चरम को पा लिया है। उसकी गति विकास के रास्ते पर अभी भी है। परंतु इस मंथन से उसने अपने ही विनाश के अस्त्र-शस्त्र तैयार कर लिए हैं। खास बात यह है कि जिस राष्ट्र ने यह अणु-परमाणु बम बनाए हैं, वह राष्ट्र भी इनकी चपेट से नहीं बच सकेगा। आज तो बटन दबाते ही सारा संसार राख के ढेर में बदल सकता है। यह युग के मंथन से निकला ज़हर है। यह अंधी दौड़ है। आज दिल्ली और वाशिंगटन दूर नहीं हैं। वोल्गा और मिसीसिपी का पानी भी बहुत निर्मल नहीं रह पाया है। गंगा की दशा और नर्मदा की कथा तो हमारे सामने है।

जब समुद्र-मंथन से विष निकला तो उससे भयानक ताप फैला। उसकी गर्मी के पास कौन जा सकता था? कौन उसे सहन कर सकता था? कौन उसे पी सकता था? सब सोचते रहे कि हमारे अतिरिक्त दूसरा इसे पीये। आज भी यही हो रहा है। घातक हथियारों के निर्माता राष्ट्र भी यही सोचते हैं कि अस्त्र-शस्त्रों का उपयोग दूसरे राष्ट्रों के विनाश के लिए हो। हम बचे रहें। लेकिन ऐसा नहीं होगा। आज पूरा संसार चिंगारी पर बैठा है। वह भभकी, कि सर्वनाश। उसका यह आत्मघाती और सर्वविनाशी विकास, अविवेकपूर्ण है।

हंसा! देवों-दानवों ने जो समुद्र-मंथन किया था, उसका उद्देश्य अमृतप्राप्ति था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अमृत के पूर्व गुण-दोषमय पदार्थ उसमें से अनायास निकले थे।

हाँ मनुष्य! तुम ठीक कहते हो। उनका लक्ष्य अमृतप्राप्ति था। उनका प्रयास उच्चतम बिंदुओं की तलाश था। अमरता की खोज था। अमृत के पूर्व निकले रत्नों के उभरने के भी कारण थे। उनके बँटवारे में संयम और सामंजस्य था। देवों-दानवों का शोध, कल्याण का भाव लिए हुए था। कल्याण के लिए ही शिव ने जहर पिया।

शोध साँड़ों की लड़ाई न बन जाए, यह ध्यान रखना जरूरी है। नयी समस्याओं के हल के लिए नया ज्ञान चाहिए। वह नया ज्ञान पिछले शोध से प्राप्त ज्ञान से भिन्न और नया होना चाहिए। वह नया ज्ञान संयम-अनुशासित हो। ज्ञान और मूल्य आपस में भाई-भाई हैं। जब तक यह भाईचारा बना रहता है, तब तक ज्ञान, विज्ञान को सही दिशा देते हुए उसे शिवत्व की ओर बढ़ाता रहता है। महान वैज्ञानिक आइंस्टाइन ने इसी को प्रमुखता देते हुए कहा था—"विज्ञान के बिना धर्म अंधा है और धर्म के बिना विज्ञान लंगड़ा है।"

ज्ञान से मूल्यों का विच्छेद आधुनिक उपभोक्तावाद की देन है। ज्ञान पर मूल्यों का अंकुश जरूरी है। ज्ञान जब तक समाज और सृष्टि के उपयोग में नहीं आता वह निरर्थक है। शोध निरपेक्ष नहीं होता।

लेकिन हंसा! लड़े तो देव और दानव भी थे?

हाँ। पर अमृत के लिए। जहर के लिए उनमें लड़ाई नहीं हुई। मनुष्य तो जहर पाने के लिए लड़ रहा है। होड़ लगी हुई है। इधर पोखरन में शक्तिपुंज घनीभूत हुआ, तो उधर कराँची में ईर्ष्या और स्पर्धा की लपटें उठने लगती हैं। इधर विषधर को नाथने की कोशिश की जाती है, तो उधर सँपेरे को बंदी बना लिया जाता है। इधर दोस्ती के हाथ शिवत्व का भाव लिए आगे बढ़ते हैं, तो उधर शव की साधना शुरू हो जाती है। हिरोशिमा और नागासाकी के इतिहास को बार-बार दोहराने की कुचेष्टा की जाती है।

हंसा! क्या इस झोंक को रोका नहीं जा सकता?

क्यों नहीं रोका जा सकता। समुद्र-मंथन के समय कालकूट गरल को पीने के लिए शिव तत्पर हुए। हे मनुष्य भाई, यह शिवत्व-बोध खत्म नहीं हुआ है। पूरे संसार में विध्वंसक हथियारों के खिलाफ लोगों की धीरे-धीरे आवाज बुलंद हो रही है। दक्षेश सम्मेलन में निशस्त्रीकरण प्रमुख मुद्दा बनकर उभरा है। तीसरी दुनिया के लोग शिवत्व-बोध के अधिक नजदीक हैं। वे विकसित राष्ट्रों की कल्याणकारी नीतियों का स्वागत करते हैं। गलत नीतियों का विरोध भी करते हैं। वे उनकी धौंस से दबते भी नहीं। अहितकारी प्रस्तावों को स्वीकारते भी नहीं। उलटे-सीधे दाँव-पेंच खेलनेवाले पहलवान राष्ट्रों के सामने झुकते भी नहीं। यह वैष्णव भाव है। असुरों के गलत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
प्रस्ताव के सामने देव परास्त नहीं हुए। उनके अहितकारी कृत्यों से विष्णु ने देवों को बचाया भी। यह विवेकसम्मत, संयमित और शिवत्व से भरा वह भाव है, जो तीसरी दुनिया के राष्ट्रों को सही का पक्षधर बनाए हुए है।

हंस को कमलिनी वन में विहार करने से रोक दिया जाए, तब भी उसके नीर-क्षीर विवेक का क्या करोगे? आज सर्वाधिक जरूरत नीर—क्षीर विवेक की है। शिव यदि समुद्र-मंथन से निकले जहर को नहीं कंठ में उतारते तो इस धरती पर उस विष की ज्वालाओं से कुछ भी शेष नहीं बचता। वर्तमान मुकाम पर आज समग्र विश्व को विकास बनाम विनाश के मुद्दे पर सोचना है। भारत इसमें अग्रणी भूमिका निभा सकता है।

हंसा! भारत तो स्वयं विकासशील राष्ट्र है। वह इस क्षेत्र में क्या कर सकता है?

हे मनुष्य! भारत भौतिक क्षेत्र में विकासशील है। वह चेतना के स्तर पर विकसित राष्ट्र रहा है। उसका अमर संदेश है कि वे शाश्वत रहे, जिन्होंने स्वयं को अमर बनाने का प्रयास नहीं किया। हम एक पैर से खड़े रहें और दूसरे से चलें। हमारी सजगता के लिए बौद्धिक मूर्छा तोड़ना जरूरी है। अतिशय बौद्धिकता भी मूर्छा का रूप होती है। भारत अपने सांस्कृतिक उपकरणों से इस मूर्छा को तोड़ सकता है।

भारत के पास विकास का सर्वथा भिन्न पैमाना है। उसने वर्षों पूर्व पुरुषार्थ चतुष्टय को अपने चिंतन के निष्कर्ष रूप में ग्रहण कर उसे व्यवहार में अपना लिया था। पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म भी है। भौतिकता भी है। जीवन की रचना-प्रक्रिया भी है। मानव की मुक्ति भी है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में संयमित और संतुलित संबंध है। भारत इस आधार पर विश्व को विकास का नया पैमाना दे सकता है। विष-बुझे बाणों को तोड़कर नष्ट किया जा सकता है।

ऋषि वैदिक प्रार्थना करते हुए कहता है :

भूमे मातर्नि धेहि मा, भद्रया सुप्रतिष्ठितम्।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम्। (अथर्ववेद 12/63)

हे पृथ्वी मेरी माँ! तुम मुझे भद्र भावों के साथ स्थापित करो। तुम मुझे स्वर्गीय आनंद की प्राप्ति कराओ। हे करुणामयी! पार्थिव सुख-संपत्ति में मुझे स्थान दो। साथ ही हे माँ! मुझे भागवती विभूति का दिव्य दान दो।

इस वैदिक प्रार्थना में जीवन के चारों लक्ष्य निहित हैं। ये जीवनमूल्य न केवल भारतभूमि पर रहनेवाले व्यक्ति के कल्याणार्थ प्रक्रिया निर्दिष्ट करते हैं, बल्कि इनमें 'सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः' की सुवास समाहित है। धर्म का अर्थ है—आत्मा का अभ्युत्थान और मुक्ति। हम जिन प्रवृत्तियों को धारण करें, वे धर्मसम्मत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हों। अर्थ, धर्म द्वारा अनुशासित हो। अर्थोपार्जन का ढंग जीव-सृष्टि के लिए अहितकर न हो। उसके साधन अमर्यादित न हों। धर्मानुसार अर्जित और धर्मानुसार व्यय किया हुआ धन ही मूल्यवान होता है। काम भी धर्म-विरुद्ध नहीं हो। मनुष्य की इच्छाएँ अनंत हैं। सबकी पूर्ति संभव नहीं होती। यदि काम, धर्म द्वारा मर्यादित न हों तो वह आत्मघाती हो जाता है। संतुलित और संयमित जीवन जीते हुए तथा अर्थ और काम को धर्म द्वारा नियमित कर आत्मोत्थान की दिशा में बढ़नेवाला व्यक्ति अंततः मोक्ष प्राप्त करता है। वह संतोषी होता है। वह शांति चाहते हुए चिरशांति को प्राप्त होता है।

विश्व की शांति में भी व्यापक स्तर पर भारतीय जीवनमूल्य (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) महती भूमिका निर्वाह कर सकते हैं। आज विश्व के अनेक राष्ट्र अनंत और अपार इच्छाओं की पूर्ति में अर्थ और काम की अमर्यादित दिशाओं में दौड़ रहे हैं। यह मानव-सृष्टि के लिए आत्मघाती है। जीवनमूल्यों की महत्ता को पुनः स्थापित करना आवश्यक हो गया है।

हंसा! क्या मनुष्य अपनी बेलगाम इच्छाओं को कभी लगाम लगा सकेगा? वर्तमान युग के जहर को पचाने के लिए क्या कोई शिव पैदा होगा?

हे मानव! मनुष्य को अपनी अतृप्त और आत्मप्रवंची इच्छाओं पर काबू पाना ही होगा, अन्यथा अनियंत्रित और अतिशय प्रवाह में सबकुछ बह जाएगा।

हाँ एक बात और, शिव पैदा नहीं होते, वह तो शाश्वत हैं। उन्हें जगाने की जरूरत है। कल्याणार्थ उनकी समाधि को तोड़ना है। विश्व के भीतर जो शिव तत्व है उसे ही उभारना है। यह धरती, मिट्टी-पत्थर—पानी से बना गोला नहीं है। वह गर्म साँसों और नम्र छुवनों की जीवित सृष्टि है। यह पृथ्वी सत्य तो है ही, सुंदर भी है।

हंसा! वो देखो प्राची में लालिमा छा रही है। चिड़िया चहक उठी है। भोर होने वाली है।

हाँ भाई! अब मैं उड़कर अपने ठौर पहुँचना चाहता हूँ।

नहीं हंसा! मेरे बंधु! उड़कर कहाँ जाओगे? यहीं रहो। यह धरती अमरों का लोक है।

❑

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आकाशप्रिया के नाम पाती

प्रिय पृथ्वी,

समझ में नहीं आता कि मैं अपनी कुशल लिखूँ या तुम्हारी कुशल-क्षेम जानूँ। मैं आकाश की संज्ञा धारण कर तुम्हारे ओर—छोर व्याप्त हूँ। मेरे फैलाव से मैं खुद विस्मित हूँ। अनंत उल्का पिंडों को मैं रोज टूटते-गिरते—मिटते देखता हूँ। मेरा खालीपन ही कभी-कभी मेरा विक्षोभ बन जाता है। कभी चाँदनी से नहाई तुम्हारे-मेरे बीच की राह दूधिया बन खिल उठती है। कभी टिमटिमाते तारों की नन्ही हथेलियों से आकांक्षाएँ बुलाती हैं। कभी बादलों से मेह बरसता है। कभी बिजुरी की कौंध में मेरी धड़कन भी सहम जाती है। आग और पानी के इस खेल में मैं मिटता हूँ, लेकिन इस खेल से बरसती जल-बिंदुओं में हे पृथ्वी! तुम्हारी जिजीविषा पलती है। तुम्हारे–मेरे बीच जो प्रकृति-पुरुष के रिश्ते हैं, उनमें महनीय सेतु-बंधन का काम बादर-बिजुरी ही करते हैं। पृथ्वी! इस अनंत—अनंत ब्रह्मांड में तुम्हारा-मेरा अस्तित्व सर्वाधिक लावण्यमय इसलिए है कि तुम्हारी कोख से और मेरे स्वेद से जीवन की आँखें खुलती हैं।

धरती तुम बहुत सुंदर हो। सुंदर इसलिए हो कि तुम पर जीवन है। तुम धरित्री हो। तुम जीवन को धारण करती हो। अखिल ब्रह्मांड में शायद जीवन की चहक सिर्फ तुम्हें और तुम्हें मिली है। यह बहुत महत्वपूर्ण बात है। इतनी महत्वपूर्ण कि इससे तुम्हारी अलग और सुंदर पहचान है। इस जीवन से दूसरे ग्रह वंचित हैं। जीवन की चाह में दूसरे ग्रह आकुल-व्याकुल हैं। लेकिन किसी के पास हवा-पानी का संसार नहीं। असंख्य-असंख्य हरे-हरे तंतुओं ने तुम्हें खुशी दी है। असंख्य-असंख्य पंखों ने आकांक्षाओं को उड़ान दी है। असंख्य-असंख्य पखेरुओं के पंखों पर तुम शक्ति-स्वरूपा बनकर शून्य-रेखा खींचती हो, तो मेरा नीला मौन कलरव में बदल जाता है। तब मुझे लगता है तुम अपनी संतानों के साथ कितनी संपन्न हो और मैं इस शून्य नीलिमा के एकांत में कितना दरिद्र, कितना तन्हा। तुम्हारा लम्हा-लम्हा, संगीत और उछाह से भरा है। मेरे पास युगों की चुप्पी है। युग-युग की विवश वाक्हीनता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वसुधरा, तुम्हारे पास कितने रंग हैं। एक-एक रंग सृष्टि का अनोखा उल्लास और दर्द समेटे हुए है। वैसे सृष्टि के मूल में तो आनंद ही है लेकिन कहीं-कहीं संधियों में, ओट में दर्द दुबका बैठा है। कहा जाता है--सूर्य रंगों का झरना है। वह प्रकाश-पाझर है। लेकिन यदि उसे एकटक देखें तो दृष्टि में काला धब्बा पड़ जाता है। सूर्य से आँख मिलाने की शक्ति की अपरिमितता किसके पास है? संपाती के बेटों के पास भी नहीं है। सूर्य के ये रंग तुम्हारे बिना चटकहीन हैं। सूर्य जब तक तुम्हारे अंगों का सान्निध्य नहीं पा जाता, उसके रंग खिलते ही नहीं। धरती! तुम नहीं जानतीं ये रंग कितनी उजास और कितनी कालिमा को अपने में पचाकर कहीं खुशी, कहीं प्रीत और कहीं शुचिता के बिंब ग्रहण करते हैं। ये रंग जब झगुलिया में, मोरपंखों में और करील के पत्तों पर द्वापर की कथा लिखते हैं, तो स्वर्ग की सारी कथाएँ फीकी लगने लगती हैं।

धरती! तुम्हारे पास एक प्रतीक्षारत धनुष है। वह धनुष त्रेता की रह-रह याद दिलाता है। सहस्रशीर्ष पुरुष उस धनुष को काँधे पर धारण कर नंगे पाँव चलने लगता है। तब पृथ्वी, तुम्हें कैसा लगता होगा? क्या उस अनुभव को अभिव्यक्त करनेवाली कोई वाणी तुम्हारे पास है? हे जलौघमग्ना धरा! तुम्हारे पास ऋषि है—मार्कंडेय। तुम्हारे आँचल में एक नदी है—नर्मदा। कहते हैं—ये प्रलय में भी बचे रहते हैं। प्रलय काल में स्रष्टा के पाँव में एक धवल रेखा-सी रेवा बची रहती है। मेकलसुता का जल अमृत है। उसका दर्शन स्वयं कल्याण है। हे महाभाग पृथ्वी! तुम्हारे पास एक हिमालय है। एक संस्कृति—स्रोतस्विनी नदी गंगा है। इनसे तुम्हारी पहचान भी है। शोभा भी है। क्योंकि इन्होंने तुम पर स्थित-जीवन को वस्त्र पहनाए हैं।

हे रसवंती वसुधा! भागीरथी मुझे करुणा की धारा-सी लगती है, और नर्मदा जीवन का शाश्वत प्रवाह। नर्मदा साधना की नदी है और गंगा सिद्धी की। गंगा के बिंदु-बिंदु में करुणा का शिवत्व है। उसका जन्म ही कल्याण के लिए हुआ। उद्धार उसके मूल में है। करुणा जब सिद्ध हो जाती है तब वह शिवत्व से बूँद-बूँद झरती है। धारा बन बहती है। तीर्थ बनाती है। घाट-घाट उत्सव रचती है। मिट्टी में महनीयता बनकर विहँसती है। जीवन में राग बन फैलती है। पत्र-पत्र पर हरियाली के छंद लिखती है। यह करुणा जीवन का शृंगार है। और हे नवलवसना धरा! गंगा तुम्हारा शृंगार है। सात्विक शृंगार। करुणा-कलित और ललित रूप का वरदान। इस वरदान से तुम धन्य हो। तुम अपनी विनम्रता में गर्व कर सकती हो, क्योंकि करुणा की नदी केवल तुम्हें मिली है।

करुणा, आनंद की भगिनी है। करुणा-विहीन आनंद-सर्जन नहीं कर सकता। हे भूमि! तुम्हारे ऊपर जो हिमालय है, वह आनंद की अद्भुत और अनुपम उछाल है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
उसके हिमाच्छादित शिखर आनंद के ऊर्ध्वगामी संग हैं। इन्हीं में से देवसरि गंगा करुणा की धारा बनकर फूटती है। आनंद ऊर्ध्वगामी है तो करुणा निम्नगामी। वह सूखे कोनों और रूखे अधरों तक जाती है। वह सगर के साठ हजार पुत्रों का उद्धार करती है। वह प्यासे कंठों की तृप्ति बनती है। वह सूखे खेतों का संस्कार बनती है। यह करुणा ही बड़ी चीज है, जो आनंद को सर्जन का अर्थ देती है।

हे मानवमाता! जब कभी सतपुड़ा की चोटियों के बीच बसे गाँवों में चाँदनी झरती है। रात-रातभर कर्मा नृत्य की गूँज पहाड़ों पर बरसती रहती है। देह-भंगिमाओं में आम-बौर की गंध फूटने लगती है। उल्लास नयनों में लाज और अधरों पर गीत लिखता है। मादल की थापों और वंशी के स्वरों के साथ सरई के पत्ते-पत्ते जीवन का राग गाते हैं। जीवन की मद्धम रोशनी में आनंद और करुणा के संवाद चलते हैं। रात महारास में बदल जाती है। जानती हो मानुषमाता! मैं सतपुड़ा की उन्हीं चोटियों पर बैठा-बैठा तुम्हारे बेटों का यह संस्कार-उत्सव देखा करता हूँ। धरती! तू बड़भागिनी है कि तुझे हजार-हजार विविधताओं का संसार मिला। तू भाग्यवती इसलिए भी है कि तेरे घर में एक मोरपंख है। एक वंशी है। एक यमुना है। एक बावरी-सी छोरी राधा है। एक माँ यशोदा है। बाबा नंद हैं। एक बरसाना गाँव है। एक भूमि है--ब्रज। कुल मिलाकर एक नटनागर है, जो तुझे निरंतर-निरंतर लीला-भूमि का मान दिए रहता है।

सागर-मंथन में अमृत निकला। देवता और दानव दोनों उसे प्राप्त करने हेतु झपटे। दानवों से बचाने के लिए इंद्र का बेटा जयंत उस अमृत-कलश को ले भागा। उसने जहाँ-जहाँ वह अमृत-कुंभ रखा, वे स्थान विशिष्ट हो गए। आज देव और दानव नहीं रहे। ये प्रवृत्तियों के रूप में तुम्हारे बेटों में मौजूद हैं। लेकिन तुम्हारे सपूतों की आनंदकामी स्फुरणता का चमत्कार यह है कि उन चारों स्थानों पर कुंभ पर्व में जल की लहरों पर प्रार्थनाएँ उकेरी जाने लगीं। यह करुणा की नदी में डूबकर आनंद की प्राप्ति का सहज प्रयास है। वे मंत्र-स्रष्टा ऋषि जिन्होंने चारों पुरुषार्थों को गाया और पाया, इन कुंभ पर्वों में संस्कृति के भीतर स्थित मनुष्य को दुलारते प्रतीत होते हैं। हे धरती! वायु मेरा अंश है। शब्द की उत्पत्ति में मेरी सहभागिता है। जल मेरे माध्यम से बनता-बरसता है। आग और पानी का खेल मेरे भीतर भी है। लेकिन ये सब मिलकर तेरे आँगन की मिट्टी से जो जीव गढ़ते हैं, उसकी लीला पर, मेरी सौ-सौ नीलिमा न्यौछावर हैं। तेरे जीवों की श्यामलता के अर्थ बहुत गहरे हैं।

हे माधवी वसुधा! भूमा ने तुझे मधुमय वरदान दिया है। तुझे अमृत संतानें दी हैं। तेरा यह विपुल-भरा भंडार आक्षितिज फैला है। तू जननी है। करुणा की धारा से तू नम है। सुना है कि पुत्र, कुपुत्र हो जाता है, पर माता कभी कुमाता नहीं होती। तब

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
हे प्रिय पृथ्वी! मैं पूछना चाहता हूँ यह भूकंप का सर्वनाशी कृत्य तुमसे क्योंकर होता है? क्यों? तुम्हारी ही संतानों की इस तरह निर्मम इति? तुम्हारे ही जायों द्वारा निर्मित संसार का इस तरह विध्वंस? गंगा की धारा तो अभी सूखी नहीं है, तब क्या एक माता की करुणा निःशेष हो गई? वे बेटे जो हमेशा के लिए सो गए, फिर जन्म लेंगे। जो गिर गए, वे फिर से खड़े होंगे। उनके घर फिर से बनेंगे। जीवन फिर रोशन पंखों से उड़ान भरेगा। सबकुछ शायद ठीक हो जाएगा, लेकिन पृथ्वी! क्या मन के घाव कभी भर पाएँगे? ममता के आँसू क्या कभी पोंछे जा सकेंगे?

मैं उत्तर चाहता हूँ मेरी प्राणवल्लभा! तुम्हारी पाती की प्रतीक्षा है।

तुम्हारा

आकाश

❑

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पृथ्वी की चिट्ठी : आकाश के नाम

हे आकाश,

तुम्हारा पत्र मिला। पत्र क्या है : वह तुम्हारे ही चित्त के लालित्य का विस्तार है। उसे बाँचकर मेरी भी आँखो में लाल डोरे उभर आए हैं। मेरी हथेली की मेंहदी और-और लाल हो गई है। मेरी छाती में दूध भर-भर आया है। तुम्हारे पत्र के शब्द-शब्द में सितारों की रोशनी की नीलिमा दमक रही है और उसी दमक में मैं तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ रही हूँ। मेरी पीड़ा तुम्हारे पत्र से बढ़ी भी है और उस पीड़ा के गर्भ में मैं विकसित भी हो रही हूँ। दूबों के मेरे रोम-रोम में सिहरन दौड़ गई है। मेरी कुक्षि अपनी पूरितता और रिक्तता की बार-बार आवृत्ति के अर्थ गुनने लगी है। मेरी नदियाँ पिन्हा गई हैं। वे रँभाती धेनुओं-सी दौड़ी जा रही हैं। तुम्हारे पत्र को पढ़कर मेरे हाथ से पत्थर कब निसट गया और मेरी मेंहदी-रची हथेली पर फूल कब-कैसे खिल गया, भान ही न रहा। मेरे माथे से चूनर खिसक गई है। आज मेरी गोद में दूरागत पवन शिशु-सा किलोल कर रहा है। दूर मैदान में मृग-शावक कुलाचें भर रहा है और झाड़ी के पीछे दुबका सिंह उस मृग-शावक की मृत्यु में अपने सुख का स्वप्न देख रहा है।

हे अनंत नीलिमा के विस्तार में अपनी पावनता को अक्षुण्ण रखनेवाले देव! तुम कितने उदार, कितने पारदर्शी हो! तुम मेरी विभूति को देखकर कितने प्रसन्न हो, यह तुम्हारे शब्द-अर्थ प्रमाणित करते हैं। वैसे शब्द के जन्म-स्थल तो तुम ही हो, इसीलिए शब्द की पावनता और उसकी असीमित मृसण अर्थवत्ता भी तुम्हारे पास है। तुम्हारा मन भी उतना ही बड़ा है, जितना तुम्हारा ब्रह्मांडीय फैलाव। इसीलिए तुम्हारे मन की सतरंगी पर मेरी मृदुताई और निठुराई को तुमने बराबर जगह दी है। ऐसा मेरे परिवार के सदस्यों के बीच नहीं होता। तुम मेरे वैभव पर निहाल हो। पर यहाँ तो एक का वैभव, दूसरे की ईर्ष्या में फूलता है। एक की सफलता पर दूसरे के निवाले में कंकर आ जाता है। यहाँ अब ज्ञानात्मक संवेदना आत्मचिंतन और आत्मोत्थान के लिए नहीं; परपतन और परदुःखवृद्धि के लिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
होती है। और संवेदनात्मक ज्ञान व करुणा के पीछे खड़ा स्वार्थ ठिठोली करता है। मैं इतना कुछ सहते-सहते पृथ्वी बन गई हूँ, लेकिन मेरी छाती का दूध मैंने सूखने नहीं दिया।

हे मेरे प्राणवल्लभ! मेरे ही जायों ने मुझे वीरभोग्या वसुंधरा कहा। मुझे खोदा। मुझे बाँधा। मुझे पाटा। मुझे लाँघा। मेरा दूध पिया। अन्न खाया। यह सब किया, सो किया, पर मेरे पेट के पानी को भी ये अब निकालकर पी रहे हैं। मेरे रोम-रोम उगे वृक्षों को काट रहे हैं। मेरी शिराओं-धमनियों-सी नदियों में अपना नरक डाल रहे हैं। मेरे हृदय-समुद्र में विषैले पदार्थ घोल रहे हैं। मेरे फेफड़ों में छेद कर रहे हैं। मेरी हवा में धुँआ मिलाया जा रहा है। मेरी आग बुझने लगी है। यहाँ आग भी, पानी भी, हवा भी, मिट्टी भी बेची जाने लगी है। मेरे ऊपर का अंतरिक्ष जो तुम्हारा ही हिस्सा है और मेरा अर्धांग है; उसे इंसैट्स, मिसाइल्स, उपग्रहों, विचित्र-विचित्र गैसों से पाट दिया है। अब बताओ जीवन की रचना के उपकरण ही साबुत नहीं रहने दिए। यहाँ जीवन ही जीवन-रस के खिलाफ खड़ा हो गया है। मेरे बेटे इतने गर्रा गए हैं कि महिषासुर की आँखों का लालपन उनकी आँखों में तैरने लगा है। आज वे पानी के खिलाफ खड़े हैं। वे हवा के खिलाफ खड़े हैं। वे आग के विरोध में हैं। वे मुझे रौंद रहे हैं। वे तुम्हारे ऊपर गोलियाँ दागने की भंगिमा में आ गए हैं। ओजोन में छेद हो गया है। कुल मिलाकर वे जीवन के हिमायती होकर भी जीवन के खिलाफ खड़े हुए हैं। और मेरे कांत! मैं वीरप्रसूता तो हूँ, वीरभोग्या कतई नहीं हूँ। मैं माँ हूँ।

हे शाश्वत नभ! कोई नहीं जानता यह सृष्टि कितने-कितने युगों की सरिताओं को पार करती आ रही है। निरंतरता ही इसकी विशेषता है और नितनूतनता ही इसकी रमणीयता है। इसकी निरंतरता के महावृत्त में मैं भी एक बिंदु की तरह हूँ। तुम्हारे महाविस्तार का ही एक हिस्सा हूँ। बल्कि अंश हूँ। असंख्य तारिकाओं के बीच में परुषता और महनीयता के साथ एक संपूर्ण लावण्य की मूर्ति हूँ। मेरी मूर्ति उस अनंत रमणीय की ही मानस-मूर्ति का साकार है। उस महारमणीय के द्वारा निर्मित मूर्ति को खंडित करने की बीमार इच्छा का फलवती होना एक गलत परंपरा का सूत्र खुलना है। इसलिए समय के महाप्रवाह में कूड़ा-करकट बह जाता है, ताकि उत्तरकाल में निर्मल-नीर बचा रहे। बहता रहे। धारा शाश्वत है। प्रवाल और शैवाल समुद्र की सुंदरता है, परंतु समय के प्रवाह की सुंदरता उन तत्वों के बचे रहने से है, जिनसे इस सृष्टि का जीवन-स्रोत सजल बना रह सके। समय निष्ठुर-उदार कुछ नहीं होता। वह तटस्थ होता है।

हे नीलव्योम! तुम्हारी नीलिमा के रहस्य कौन जान सका? तुम अनंतकेशी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शिव-सरीखे ब्रह्मांड के ओर-छोर में परिव्याप्त हो। तुम्हारी ऊँचाई की गहराई में सौर-मंडल के कितने-कितने हास-रुदन छुपे हैं। कितनी आकाशगंगाएँ अपनी धवलता में बूँद-बूँद तारिकाओं से गुँथी धाराएँ बन बहती रहती हैं। कितनी ही आकाशगंगाएँ देवों की और पुरखों की राह बन अमरत्व को गुहारती रहती हैं। तुम्हारे उल्का-पिंडों में मानव के भय और औत्सुक्य दोनों जगते हैं। मेरे ही पंखेरुओं के लिए तुम मुक्ति का स्थल और अपनी उड़न-शक्ति की सीमा बने हुए हो। पंख थक जाते हैं लेकिन तुम्हारा विस्तार और गहराई कहीं-कभी खत्म नहीं होती। अनगिनत अदृश्य प्रयोगशालाएँ तुम्हारे आधारहीन आधार में चलती रहती हैं। जिनसे हवा बनती है। पानी बनता है। आग बनती है। तुमने पत्र में लिखा है कि मुझ पर जीवन है, यह विशेष बात है। परंतु हे मेरे कुक्षिसंवर्धक! यह जीवन भी तुम्हारे द्वारा निर्मित हवा-पानी के बिना संभव नहीं है। इसलिए यह गौरव भी मैं तुम्हें ही देती हूँ। यह इसलिए भी कि कोई एक तत्व न तो भौतिक वस्तु रच सकता है और न ही उसका रक्षण कर सकता है। यह द्वंद्वात्मक विकास का तथ्य भी है और शैव दर्शन तथा वैष्णव दर्शन का सत्य भी है। कोई मूल एक हो सकता है, लेकिन जीवन या वस्तु के रचाव में उसे शिव और शक्ति, विष्णु और उनकी आह्लादिनी शक्ति तथा वाद-प्रतिवाद बनना ही पड़ेगा। मेरे ऊपर चिहुँकते जीवन में तुम्हारा अरूप ही रूपायित हो रहा है।

हे लोहित गगन! तुम्हारे पास अनेक ज्योतिपुंज हैं। सूर्य प्रकाश का स्रोत है। प्रकाश का झरना है। सूर्य है इसलिए उजियारा है। इस उजियारे से ही जीवन के बाहर-भीतर के ज्ञान-अज्ञान का भी मान-अनुमान होता है। मुझ पर रहनेवाले सारे प्राणी इसलिए उसकी अभ्यर्थना करते हैं। बालारुण के निकलते ही जीवन की पाँखें खुलने लगती हैं। इस त्रिआयामी सृष्टि के रंग खिलने लगते हैं। समय और स्थान के बीच में ऊर्जा अँखुवाती है और गति विहँसती है। कोयल के कंठ से सारी ज्ञानेंद्रियों का समवेत अनुभव वाणी (शब्द) बनकर झरता है। दूसरी तरफ बिजली के तार पर बैठा कौआ अपने पंख खुजलाता है और चोंच को पजाता (तीखा करता) है। तुम्हारे पास एक चंदा मामा है, जो माँ यशोदा की गोद में मचलते हुए कृष्ण को आकर्षित करता है। वह किसी परात के पानी में उतर तो सकता है, पर कृष्ण-सरीखे लीला-शिशु की भी पकड़ में नहीं आता। यह कैसी लीला है कि कृष्ण स्वयं चंद्र की सोलह कलाओं से पूर्ण हैं और उसी चंद्रमा को पकड़ने के लिए मचल रहे हैं। तुम जानते हो निर्मलता के देवता कि शरद की जुन्हैया जब मुझ पर बिछती है तो लगता है कृष्ण की आह्लादिनी राधा की गोराई ही बगर-बगर गई है। यह चंद्रमा की चाँदनी ही मेरे शाल्य में दूध भरती है। कपास

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
में उज्ज्वलता भरती है। जुआर के दानों में मिठास भरती है। कमलिनी में सुगंध भरती है। एक चित्त-विस्तार तुम्हें और मुझे अपने लालित्य से बाँध देता है। नेह के क्षीण अदृश्य रिजु में अनुबंध कर लेता है।

हे दृश्यमान! तुम्हारे पास गुरु वृहस्पति हैं। और तो और दानवों के गुरु शुक्राचार्य भी हैं। बुध हैं। मगंल हैं। सबको दुरुस्त करनेवाले शनि हैं। राहु-केतु हैं। कुल मिलाकर नव ग्रह हैं। ये ही पृथ्वी के मनुष्यों के ज्ञान-विज्ञान के आधार हैं। गणित और ज्योतिष की अवधारणाएँ इन पर टिकी हैं। मनुष्य का भविष्य-सरीखा यदि कुछ होता है तो इनके पास वे अनुमान हैं, जो मनुष्यों के सपनों के घरौंदे भी बनवाते हैं और उन्हें मिटाते भी हैं। सारे विकास के आधान तुम्हारे ही ग्रह हैं। इन्हीं से ज्ञान-विज्ञान की चट्टानों पर खड़े हो मानव ने युग-निर्माण किए हैं। जिनके कार्यों के हल्दी-कुंकुभ के छापे समय की दीवारहीन दीवार पर चित्र लिखे-से हैं। तुम्हारे इन सदस्यों की स्थिति से मनुष्य ने ज्ञान पाया। मनुष्य ने सृष्टि के हित में ऋचाएँ लिखीं। परम कल्याणक से प्रार्थना की कि 'स्वस्ति पंथामनुचरेम्'। हम कल्याण-मार्ग के पथिक हों। मनुष्य ने विज्ञान पाया और प्राप्त विज्ञान से उन्हीं ग्रहों की ओर दौड़ा, जो उसके ज्ञानसूत्र हैं। यहाँ तक तो ठीक। पर विज्ञान का विरूप भी उसने गढ़ा और वह विकार ही सृष्टि को विकृत कर रहा है। संस्कृति मन्वंतरों में बनती है। उसकी रक्षा भी माँ का कर्तव्य है, क्योंकि माँ भी संस्कृति होती है। अतः मैं भी एक अर्थ में भूमा की संस्कृति हूँ।

हे अंबर! तुम मुझे भी अपनी नीलाभा के परिधान से वेष्टित किए हुए हो। अतः यह नहीं हो सकता कि मेरा सौंदर्य केवल मेरा अर्जन या निसर्गगत उत्पाद है। ज्ञान-विज्ञान से लेकर मेरा नैसर्गिक सौंदर्य तक तुम्हारे-मेरे पारस्परिक मेंहदीभाव का परिणाम है। तुम्हारे सौर-मंडल में ग्रह-नक्षत्र एक-दूसरे के आकर्षण और अस्तित्व पर टिके हैं। उनकी स्थिति ही सहअस्तित्व पर है। यह कितनी सुंदर बात है। लेकिन मेरे पुत्रों ने अपने-अपने देश बना रखे हैं और उनमें से कुछ तो एक-दूसरे को मरने-मारने पर उतारू हैं। अपना खून अपने खून को ही पीने और बहाने के लिए लश्कर सजा रहा है। लौह-शृंखलाओं से मुक्ति की झनकार कभी नहीं आती है, उनसे आतंक का गुस्सा जरूर खनखनाता है। ज्ञान पाकर व्यक्ति विनम्र हुआ था। वह क्षितिजों के पार भी पहुँचा था, जहाँ आँगन के पार कोई द्वार खुलता हो। विज्ञान ने उसकी उपलब्धियों की संख्या में इजाफा किया है। जीवन को ग्रहों-नक्षत्रों तक भेजा है; लेकिन कहीं न्यूटन औंधे मुँह भी गिरा है और आइंस्टाइन की खोपड़ी किसी प्रयोगशाला में सुबक रही है। सिकंदर की महत्वाकांक्षाएँ जनरल परवेज मुशर्रफ में जिंदा हैं। नेपोलियन की सेना का फुग्गा अभी भी बिन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लादेन फुगा रहा है और मोहम्मद गजनी जिंदा होकर तालिबान में बुद्ध की प्रतिमाएँ तोड़ रहा है। उसकी दृष्टि में मोतियाबिंद आ गया है। इसीलिए उसे कला और धर्म में अंतर नहीं दिखाई दे पा रहा है।

हे नीरद-मालाओं के धारक! वर्षा से तुम्हारी शोभा है। वर्षा तुम्हारी हृदय-धारा है। वर्षा तुम्हारी अनुभूति है। इस अनुभूति की अभिव्यक्ति में जब तुम मेघों की कविता लिखते हो और वह कविता जब शब्द-शब्द, बूँद-बूँद मुझ पर झरती है तो परमाप्रकृति का महाकाव्य रचता है। ये काले-कजरारे मेघा आँखों को कितना-कितना भाते हैं और आकांक्षाओं-अभिलाषाओं को कितना-कितना सीचते हैं, यह शायद तुम्हें भी पता नहीं। मेरी सारी हरियाली ही इनसे हैं। यह हरापन कहीं छूट जाए तो मेरी छाती सूख जाए और मेरी कोख ऊसर हो जाए। इसलिए हे पुरुष! तुम मुझ प्रकृति को प्रकृतित्व देने हेतु बरसते रहो। तुम्हारी गर्जना का भी एक लालित्य है, इसीलिए उस गर्जना में मुझे भय नहीं उत्कंठा अनुभव होती है। मेरी आशाएँ जगती हैं और दिशाएँ मेरे कान बन जाती हैं। जो जल तुम श्यामल घनों से बरसाते हो, वही मेरा जीवन-रस है। वही फूलों में गंध, वस्तु में रूप, फलों में रस, मेरी देह पर स्पर्श और झरनों में शब्द बनकर रूपायित होता है। यही जल मेरे गर्भ में जाकर मेरे जीवन में संतुलन पैदा करता है। भू-गर्भ जल और थल पर स्थित जल की मात्राएँ भी एक तरह का संतुलन कायम करती हैं। मेरे बेटों (मनुष्य) ने भू-गर्भ जल का इतना दोहन किया, इतना दोहन किया कि मेरे भीतर का सुंतलन गड़बड़ा रहा है। वही गड़बड़झाला कभी भूकंप और कभी ज्वालामुखी बनकर फूटता है।

हे उदारचेता आकाश! कौन माँ अपनी संतान का अनिष्ट चाहती है? परंतु समय की शाश्वत धारा में बुलबुलों का बनना-फूटना उस परमाप्रकृति के लिए कब गणना का विषय रहा? लेकिन इससे यह नहीं कि मेरी करुणा की आँखों की कोर गीली नहीं होती है। मैं भी विवश हूँ। आखिर मैं भी तो उस परमसत्ता के आधीन हूँ। एक बात और है कि जब मेरी ही इज्जत पर बेटे वैभव जुटाएँगे। मेरा पानी बोतलों में बंद करके बेचेंगे। मेरी हवा को साँस लेने लायक भी न रहने देंगे। उनके भीतर मनुष्यता की आग बुझ जाएगी, तब मैं कभी-कभी उन्हें चेतावनी देने के लिए हाथ में बंदूक ले लेती हूँ। तुम्हें याद है आकाश! 'मदर इंडिया' फिल्म का वह अंतिम दृश्य-जब बिरजू (सुनील दत्त) डाकू के रूप में आकर गाँव की बेटी को उठाकर ले जाने लगता है, तब बिरजू की माँ (नर्गिस) उसके पीछे दौड़ती आती है और कहती है, 'बिरजू, यह लड़की गाँव की इज्जत है, इसे छोड़ दे वरना गोली मार दूँगी।' बिरजू कहता है, 'नहीं! तू मेरी माँ है, तू मुझे गोली नहीं मार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सकती।' बिरजू की माँ कहती है, 'बिरजू, जो माँ जन्म दे सकती है वह जीवन ले भी सकती है।' और वह गोली चला देती है। इसके बाद वह बिरजू की मौत पर रोती भी है। उसके हाथ में बंदूक लेने में भी यहाँ ललित है, क्योंकि वह शिवत्व से जुड़ा है। हे पृथ्वीकांत! ये मेरे मन के भाव हैं, जिनमें तुम अपने उत्तर शायद पा सको। वैसे परमाप्रकृति के रहस्यों से संबंधित प्रश्नों के उत्तर कब कोई दे सका है?

तुम्हारी

पृथ्वी

❑

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वासंती पत्र पर लिखा निसर्ग का काव्य

वसंत आ गया है। भारतवर्ष में इस साल ई.सन् 2000 कहीं सूखा है, कहीं बाढ़। एक सूखे से अकाल है। दूसरा पानी से अकाल है। लेकिन काल के भाल पर वसंत फूलों का कुंकुम और सुगंध के अक्षत लगा रहा है। इस वर्ष केवल अनावृष्टि या अतिवृष्टि के कारण ही प्रकृति कुछ असामान्य-सी हुई हो, ऐसा नहीं है। प्रकृति पूरी तरह अनखाई-सी हो गई है। पौष के महीने में आमों में बौर आ गए हैं। चलो आम्र-बौर तो एक महीने पेश्तर ही आए, पर जब यह देखा कि पौष में महुआ झरने लगा, तो बुद्धि अचकचा गई। प्रकृति भी सूखे की मार से भ्रमित हुई है या मनुष्य की प्रकृति-विरोधी करतूतों के कारण ये दिन देखने पड़ रहे हैं? मुझे तो दूसरा कारण ही ज्यादा सही लगता है। महुआ फागुन-चैत में फूलता है। पर दो महीने पहले ही प्रकृति का फूलकर निफूला हो जाना, प्रकृति की क्रोधित प्रतिक्रिया है या ग्रीष्म की भयानकता से पूर्व ही अपने श्रृंगार की मोहकता? या धरती की छाती फटने से पूर्व उसे दी जाने वाली सुमनों की सांत्वना?

प्राचीन काल में दंडक वन में कोई अरजा कन्या थी, जिसके साथ किसी राजा ने बलात्कार किया। हमारे यहाँ कन्या को देवी का स्वरूप माना जाता है। वह कन्या अरजस्वला थी। अबोध थी। उसके शाप से पूरा देश रसमयता से हीन हो गया। लताएँ सूख गईं। पौधों पर फूल आना बंद हो गए। पेड़ों ने फल देने से मना कर दिया। प्रकृति दुःखित हो उठी। उस कन्या के साथ अप्राकृतिक भोग से पूरी प्रकृति व्याकुल हो उठी। नर्मदा तट की हरी-भरी वादियाँ उजाड़ हो गईं। केरल की मौन घाटी कराह उठीं। यह पृथ्वी 'वीर भोग्या वसुंधरा' नहीं है। यह वत्सला है। यह माँ है। भोग से वात्सल्य ऊँचा होता है। मातृत्व अधिक स्थायी, गहरा और व्यापक होता है। भोग, भोग और भोग उचित नहीं। इससे वस्तुओं से पटे हुए बाजार और कचरे से भरे हुए महानगर ही प्राप्त होंगे।

वसंत कामदेव का सखा है। काम का अर्थ वासना नहीं है। काम का अर्थ 'इच्छा' है। इच्छाएँ तो अनंत हैं। सबकी पूर्ति होना संभव नहीं है। फिर भी वसंत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुछ इच्छाओं की पूर्ति हेतु अनुकूल और उल्लासपूर्ण वातावरण निर्मित करता है। वसंत की उत्फुल्लता में भी रमणेच्छा से अधिक प्रबल सिसृक्षा होती है। धरती की कामनाएँ किशलयों में, पुष्पों में, फलों में चहकती हैं। यह प्रकृति के द्वारा उस परमचेतना की अभ्यर्थना है, जो 'स्मर' रूप में चराचर में व्याप्त है। प्रकृति के वासंती पत्र-पत्र पर लिखा गया निसर्ग का यह अकलुष काव्य "त्रैलोक्य मोहाय विद्महे, स्मराय धीमहि, तन्नोविष्णु प्रचोदयात्" की ही स्तुति है। समुद्र से गहरे हृदय में उसी से मिलने की वाडवाग्नि जल रही है। पर्वत-पर्वत खिले फूलों भरे आकाश में उसी का रूप उद्भाषित हो रहा है। पक्षियों के कलरव में उसी के गान प्रस्फुटित हो रहे हैं। सरिताओं की गति में वही गतिमान है। यह प्रकृति की कामनाओं का वह स्तर है जो अंतर के अविकसित को विकसित करता है। यह मात्र 'रमण तृषा' का हेतु नहीं, बल्कि मातृत्व का उदात्त रूप है, जो सर्जना में आनंद का आस्वादन करता है।

प्रकृति की उपर्युक्त आत्मउत्थित 'भाव स्मरता' की तृप्ति का रूपांतरण भारतीय वाङ्मय के भक्ति काव्य में मिलता है। जयदेव का गीत गोविंद राधा-कृष्ण की मान-मनुहार और रति केलि से पूरित मात्र शब्दचित्र नहीं हैं, बल्कि वह रस, चिद् और आनंद की त्रिवेणी की धार है। 'सद्' इच्छाशक्ति के संदर्भ में 'रस' ही हो जाता है। इसीलिए रस और ईश्वर का स्वरूप-साम्य निदर्शित करते हुए कहा गया है– 'रसौ वै सः'। विष्णु का स्वरूप कृष्ण हैं। कृष्ण ही 'स्मर' हैं। रस की प्रतिमूर्ति हैं। रस हैं। संपूर्ण वैष्णव काव्य 'रस' की दिव्यानुभूति से भरा हुआ है। जयदेव गीतगोविंद की पहली ही अष्टपदी में वसंत का अनुपम वर्णन करते हैं :

ललित लवंगलतापरिशीलन, कोमल मलय समीरे।
मधुकरनिकरकरंबि कोकिल कूजित कुञ्जकुटीरे।।
विहरति हरिरिह सरसवसंते।
नृत्यति युवतिजनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरंते।।

(सखी राधा से कहती है–राधे! सुंदर दिखनेवाले पुष्पों से लदी बेलों के स्पर्श से मादक बनी, मंद प्रवाहित होते मलय समीर के साथ, भौंरों की पंक्तियों से गुंजित तथा कोयलों के संगीत से कूजित कुंजों वाले तथा वियोगियों को संतप्त करनेवाली इस वसंत ऋतु में प्रियतम श्रीकृष्ण तरुणी गोपियों के साथ नृत्य कर रहे हैं।)

विशेष बात यह है कि उपर्युक्त पंक्तियों में वर्णित नृत्य शरद का 'महारास' नहीं है। वह वंसत का 'रास' है। शरद के 'महारास' में भराव होता है। वह किशोर मन की इच्छाओं का संपुञ्जन होता है। वसंत का 'रास' आत्मोत्सर्ग होता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
है। वह यौवन का आत्मदान होता है। राधा से यही संकेत सखि कर रही कि राधा! मान छोड़ दे। यह समय सबकुछ श्रीकृष्ण को अर्पण करने का है। आत्मोत्थान का है। 'रसराज' श्रीकृष्ण के साथ नृत्य की ताल, लय, स्वर, गति सबकुछ बन जाने का है। 'माधव' हो जाने का है। 'मधु' हो जाने का है। जीवन का परिपक्व होकर पुष्पित और फलित होने का है। इसीलिए वसंत के 'रास' में एक अविकल रागिनी बजती है। एक अटूट लय संपूर्ण वानस्पतिक चेतना में समाकर उमग-उमग जाती है। रस की गागर छलकने लगती है। धरती फूलों की हो जाती है। आकाश फूलों का हो जाता है। हवा में गंध फूलों की भर जाती है। जल का तारल्य फूलों में मधु बनकर रमता है। चारों तरफ उर्ध्वचेतन की अग्निशिखाएँ जलने लगती हैं। जीवन समय के वृंत पर मुकुलित और उत्फुल्लित हो उठता है।

मुझे तो वसंत के महाभाव में वैष्णव काव्य की उदात्त भूमि पत्र-पत्र और शब्द-शब्द के हाथों में फूल और नयनों में समर्पण लिए प्रतीत होती है। भारतीय काव्य में ईश्वर के प्रति आकर्षण और अनुरंजन अपने आत्मदान की हद तक जाता है। अपने को खोकर ही उसे पाया जा सकता है। यह खोना अपने परम से मिलना है। अपने मनचाहे से मिलना है। अपने मनचीते में समाकर अनश्वर बन जाना है। यह फ्रायड महाशय का 'लिबिडो' नहीं है। फ्रायड ने गधे-घोड़ों को एक ही लाठी से हाँका है। उन्होंने 'काम' को ही सारे संसार का संचालक मान लिया। भारतीय संदर्भ में 'काम' मात्र ऐंद्रिक संवेदन नहीं है। यह दमित वासना की काल्पनिक तुष्टि से आगे का सर्जनात्मक आवेग है। इस आवेग में थोड़ा मान, थोड़ा समर्पण, थोड़ा गर्व, थोड़ा आकर्षण और सर्वस्व दान समाया है। वसंत में वृंत-वृंत से पुष्प-स्तबकों के रूप में वानस्पतिक जगत में निहित रस-चिन्मय-आनंद का ही प्रस्फुटन होता है। यही रस-चिन्मय-आनंद भक्तिकाव्य से निर्झर की भाँति झर रहा है। मीरा गाती हैं :

सुनी हौ मैं हरि आवन की आवाज।
म्हेले चढ़ी–चढ़ी जोऊँ सजनी, कब आवै महाराज।।

यह कातर पुकार 'काम-तृप्ति' की अंतर-वेदना का विस्फोट नहीं है। यह प्रीति, पारस्परिकता, सुकोमलता, रसज्ञता, श्रेष्ठता के संवेदनों की उर्ध्वचेतन स्थिति है, जो आह्लादन के शिखर तक जाती है। "कब आवै महाराज" में जो प्रतीक्षा की चिरंतनता और अंतहीनता है, वह जीवन की रागात्मक वृत्ति की ध्वन्यात्मकता का सौंदर्य है। इस राग में देह की सीमाएं चुक जाती हैं। यहाँ तक कि 'मन' की देहरी भी लाँघ ली जाती हैं। यह हृदय का भावानुप्रवेश है, जहाँ अनुभव होता है कि बियाबान जंगल में भटकते हुए जीव को खुली और कलरव-कूजित स्थली

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

मिल गई हो। लगता है कि घोर अँधेरी रात में [illegible] कहीं दूर टिमटिमाता दीपक दिखाई पड़ गया हो। रेत के ढूहों के बीच भागते-हाँफते मृग को मरुद्यान मिल गया हो। यह लोकोत्तर होते हुए लोकोत्तर भूमि पर प्रवेश का आमंत्रण है। यह धरती के हरे-हरे पन्नों पर रोशनी की स्याही से लिखी पुष्पों की कविता है। यह निसर्ग का काव्य जीवन के धरती-आकाश में स्वर्णबेला को बाँध देने का मधुर विहान है।

इस स्तर से नीचे उतरने पर प्रकृति के वासंती-निबंध में से हमें दो-चार बजरबट्टू ही हाथ लगेंगे। प्रकृति भोग के लिए नहीं है, वह जीव-सृष्टि के लिए प्राणत्व और शक्ति का अक्षय स्रोत है। अतः उसकी रक्षा में ही पक्षियों की उड़ान और साँसों की आवा-जाही संभव है। जब दोहन होगा, और दोहन भी अंधत्व भरा होगा, तो निधि कितनी ही विपुल हो, उसकी इति होना ही है। यह धरती, यह प्रकृति तो बड़ी उदार है, लेकिन इसका अतिशय-अनवरत दोहन इसकी क्रुद्धता का कारण भी बनता है। इस वर्ष का सूखा, प्रकृति के क्रोध-रूप का ही ग्यारहवाँ 'रुद्र' है। यह रुद्र जब विकराल होता है, तो धरती पर बवंडर खड़ा हो जाता है। उसका रूप-सूखा और अतिशय वर्षा और अंधड़ तीनों ही हैं। प्रकृति संतुलन के मूलाधार पर स्थित है। एक भी तत्व की मात्रा कम-ज्यादा होती है तो प्रकृति उसके संतुलन की दिशा में तेज दौड़ती है। उसी दौड़ के झपाटे में वे परिणाम प्राप्त होते हैं, जो सूखा और बाढ़ और हिमपात के रूप में इस वर्ष मिल रहे हैं।

यह कल्याणी सृष्टि आकर्षण से भरी है। ऐसा नहीं है कि केवल मनुष्य को ही प्रकृति की चाह होती है। प्रकृति भी मनुष्य को पाने की; उसे अपने साथ, अपने पास रखने की चिन्मय अभिलाषा से भरी हुई है। दिक्कत यह हुई कि प्रकृति की अभिलाषा में तो सम-भाव और सम-आवेग है, लेकिन मनुष्य का आकर्षण, मोह में और फिर लालसा में बदल गया है। लालच डुबो देती है। प्रकृति के उद्दाम दोहन की मनुष्य की कुंठाग्रस्त लालसा ही मनुष्य के लिए आत्मक्षयी बन गई। प्रकृति का रस सूख चुका है। सूखे और तप्त भू-भागों के लोगों का बचपन जल्दी बीत जाता है। जवानी एक झटके से आती है और दूसरे झटके में उतर जाती है। जीवन मुट्ठी की रेत-सा खिसकता जाता है। जीवन का आवेग कब ढुरकक़र सूख गया, पता ही नहीं चल पाता है। सूखे भू-भागों की वनस्पति की भी दशा ऐसी ही हो गई है। प्रमाण हमारे सामने है कि पौष में आम बौरा गए हैं और महुआ झर रहा है। जबकि आम माघ में वसंत-पंचमी पर बौराता है, महुआ फागुन में।

मेरा मस्तिष्क रह-रहकर एक बात और सोचता है कि उस प्रकृति-सी स्वच्छंद विचरण करती अरजा कन्या के साथ भोग का शाप ही उभरकर इस अकाल और सूखे में मूर्तिमान हुआ है। प्रकृति में निहित कन्यात्व भाव का अप्राकृतिक

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

दोहन मनुष्य का जघन्य अपराध बन गया है। अभिशप्त दिनों में कई चीजें उलट-पुलट होती हैं। बहुतकुछ असामान्य-सा भी होता प्रतीत होता है। तब फिर आम और महुए में वसंत का समयपूर्व आगमन, अप्राकृतिक भोग और बाजारवाद को खबरदार करने का प्रकृति-संदेश है। प्रकृति-वैभव से भरा अमंद हास है।

❑

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मन में खुशबू-सी झरी

माँ से बचपन में एक गीत सुना था, जिसके भाव हैं—'हे सूरज! अब तुम निकल आओ; मैंने अनाज के साथ-साथ अँधरे को भी पीस डाला है।' माँ भिनसारे से घट्टी (चक्की) में अनाज दलते हुए यह गीत गाती थी। मैं उसके पास बैठकर कंदील के उजाले में अपना पाठ याद करता रहता था। उस समय याद किए पाठ स्मृतियों में उतने उजले नहीं हैं, जितना माँ से सुना गया वह लोकगीत। उस समय तो लोकगीत का अर्थ समझ में नहीं आया था, परंतु आज जब उस भाव-नदी में डुबकी लगाता हूँ, तो संघर्ष का स्वीकार और स्वाभिमान की दीप्ति से निथरने लगता हूँ। माँ अनाज पीसकर जब सुबह–सुबह भमूघर में से अंगार निकालकर चूल्हा जलाती थीं, तो आँच में चमकता उसका मुख-मंडल कर्म की गीता बाँचने लगता था। लगता था उसके मन में खुशबू-सी झर रही है।

मुझे लगता है कि यह सूर्या-भान माँ के कहने पर ही निकलता है। बड़ा हुआ। होश सँभाला तो पता चला कि ऐसा नहीं है। अनगिनत माताएँ अंधकार से लड़ते-लड़ते सो गईं। उनकी इच्छाएँ खाद हो गईं। वे मुट्ठी-भर ठठरी हो गईं। अपनी ममता में विस्तारित होकर धरती हो गईं। पर सूरज उनके कहने से नहीं निकला। सूरज अपने ही ढंग से चमकता है। अपने ही ढंग से प्रभात और साँझ रचता है। यह तो माँ की ममता की उछाल है कि वह सूरज का आह्वान करती है। यह उसके प्रकृति-तत्व का प्रेमिल प्रवाह है कि वह आलोक के महानायक को टेरती है। उस टेर में कर्म का नमक घुला रहता है।

और सूरज निकल आता है। पूरब के आकाश में चमत्कार हो जाता है। कलियाँ अपनी आँखें मलती हुई जाग जाती हैं। हरे-तृण अपने सिर पर ओस के कलश ले भूमा में निहित शिवत्व का अभिषेक करने लगते हैं और मंत्रोच्चार से दिशाओं में वाणी का महात्म्य स्थापित करते हैं। एक नन्ही बदरिया आकर सूर्य के घड़े में से रंग निकालकर आकाश के आँगन में राँगोली मांड देती है। तितलियाँ अपने पंखों पर आकाश तौल लेती हैं। मधुमक्खी सुमनों को नेह देकर मधु ले उड़ती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हरसिंगार की डाली पर नीलकंठ आकर बैठ जाता है और देखत-देखते हरसिंगार धरती पर चू पड़ता है। धरती फूलों की हो जाती है। इतने में बछड़ा रँभाता है। गाय हुँकरती है। पिता दोहनी लेकर दूहने बैठ जाते हैं। दो थनों का दूध पीकर बछड़ा तृप्त है और दो थनों का दूध दुहकर पिता संतुष्ट। थनों से झरते दूध के स्वरों की लय को सुनते हुए आभास होता है कि प्रकृति के तत्व-तत्व में झरती खुशबू का महाराग सुनाई दे रहा है। मानो ऋग्वेद का ऋषि गा रहा हो—एकं सद् विप्रा बहुधा वदंति।

एक तरफ माँ ने सत्य के पुंज को अँधरे के दलनस्वरूप में आवाज लगाई। दूसरी ओर ऋषि ने कण-कण में व्याप्त सत्य के रूपाकार प्रस्फुटन के बारे में कहने की कोशिश की है। दो बिंदु हैं; एक लोक का, दूसरा शास्त्र का। शास्त्र से भी लोक पहले अस्तित्व में आया। लोक से बहुत-सी बातें शास्त्र ने ली हैं। जो लोक में है, वह वेद में भी है। दो समान बातें दोनों के पास विद्यमान हैं—पहली, सत्य की सर्वव्यापी संप्रभुता का स्वीकार और दूसरी, संघर्षशीलता हेतु अक्षय शक्ति का आराधन। माँ के द्वारा सत्य के रूपात्मक स्वरूप सूर्य के आह्वान में उक्त दोनों ही बातें झिलमिला रही हैं। अथर्ववेद के भूमि-सूक्त में पृथ्वी की स्तुति मिलती है, जिसमें 63 श्लोक हैं। इनमें नयी गुहार और नयी अनुगूँज आज भी सुनाई देती है। जिनमें 23 वें श्लोक का अनुवाद है :

ओ मेरी माता वसुंधरे
है तुझमें जो व्यापक गंध,
औषधियाँ, जलराशि जिसे
हैं धारण करतीं निष्प्रतिबंध,
जिसका सेवन करते हैं
गंधर्व और अप्सरा अशेष
इससे कर सौरभित हमें तू,
कोई करे न हमसे द्वेष।

वाणी का यह क्षीरसागर धरती से लेकर सूर्य तक लहरा रहा है। लोक भुवन भास्कर को हाँक लगा रहा है। शास्त्र भूमा की वंदना कर रहा है। दोनों ही प्रकृति और परुष के बीच सेतु निर्मित कर रहे हैं। माँ, धरती समान रसा और सहनशीला हैं, वह सूर्य की अभ्यर्थना कर रही हैं। ऋषि ज्ञान में भास्कर है, वह पृथ्वी की स्तुति कर रहा है। अपनी इयत्ता का अतिक्रमण कर जिस क्षण महाबोध और महाभाव में माँ और ऋषि प्रवेश करते हैं, काल की उस लघुतम इकाई में वे विराट हो जाते हैं। लोक-गीत के जन्म की उस झरती खूशबू को विश्व की पहली माँ ने अपने संघर्ष में पाया और ममता (लोरी) में गाया। तत्व-खोजी ऋषि ने करुणा की आर्द्रता में जीवन का मर्म

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
पाया और जीव मात्र के रक्षार्थ गाया। भास्कर की ज्योति में अभिव्यक्त सत्य को लोक ने अपने शोणित की ललाई और ऊर्जा में रूपांतरित करने की सुंदर आकांक्षा प्रकट की। शास्त्र ने पृथ्वी को मातृत्व देते हुए उससे सहस्रार दुग्ध-धार देने की विनती की। अपने अपूर्व फल देने की याचना की। तेजस्वी बनाने की प्रार्थना की।

मातृत्व की खुशबू समस्त भारतीय संदर्भों में सदा-सदा से झरती रही है। शिशु के गर्भस्थ होते ही जीवन की रुत बदल जाती है। नयनों की कोर का काजल और गाढ़ा हो जाता है। मेंहदी घिसकर बाँटनेवाले और लगानेवाले के हाथों पर गहरी चढ़ जाती है। और आज के संदर्भ में पाँवों की यात्रा और हाथों का श्रम पुरुष के बराबर आकर खड़ा हो जाता है। परिस्थितियों के बीच आज यह मातृत्व हर दृष्टि से निर्णायक भूमिका निभा रहा है। ऐसे समय कोख हरी होने पर रोम-रोम से फूटती खुशबू एक ओर दांपत्य को महक-महक करती है, दूसरी ओर वह स्त्री-पुरुष की बराबरी, सृष्टि के विकास और समाज-संरचना दोनों में तय करती है। मातृत्व की यह खुशबू माँ को कहीं भी कमजोर नहीं करती है, बल्कि जीवन के भराव और स्वप्नों की पूरकता के द्वार खोलती है। वह और अधिक ताकतवर बनती है। ऐसा होना माँ की परंपरित छवि का युगानुकूल विकास ही है। यह विकास अपनी परंपरा से कटकर कतई नहीं है, बल्कि अपने बहुत पुराने स्वरूप का नये संदर्भ में ही वरण है। क्योंकि हमें ज्ञात है कि रामायण और महाभारत काल में माँ की स्थिति घर, समाज से लेकर राजकाज के कार्यों तक संपन्न और महत्वपूर्ण थी। यह रामचरितमानस से भी प्रमाणित है। वनवास जाने की स्थिति में कौशल्या राम से कहती हैं :

जो केवल पितु आयसु ताता, तो जनि जाहुँ जानि बड़ि माता।
जो पितु-मातु कहेहु वन जाना, तो कानन सत अवध समाना।

गुणों की प्रतीकात्मक अभिव्यंजना भी भारतीय वाणी का गुण है। धरती के औदार्य के रूप में माँ की वंदना हमारी कृतज्ञता की ही परिणति है। अतः मामला एकपक्षीय नहीं है। जन्मदात्री यदि महान है, तो उसका भान पुत्र को है। यह बोध ही भारतीय संस्कृति को मेंहदीभाव से रँगे हुए है। पुत्र माँ की ममता के प्रति मात्र कृतज्ञता ही प्रकट नहीं करता, वह उसका पुत्र होने का गर्व करता है। कुशी-लव जब रामकथा को गाते-गाते अयोध्या पहुँचते हैं। वे राम की सभा में कथा को गाते हैं। राम उनसे अपना परिचय देने को कहते हैं। कुशी-लव बताते हैं—हम माता सीता के बेटे हैं। वाल्मीकि आश्रम से आए हैं। अयोध्या के राजा के छोटे भाई लक्ष्मण हमारे काका हैं। हम अपने पिता का नाम नहीं जानते। यह सुनकर राम की आँखों से गंगा-जमुना बह निकलती हैं। राम चल देते हैं वाल्मीकि के आश्रम की ओर। राम मनाते हैं सीता को, कि सबकुछ भूलकर चलो, लौट चलो अयोध्या। सीता नहीं मानती है। अंत में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वशिष्ठ कहते हैं—पुत्री! चलो! लौट चलो अयोध्या। सीता कहती हैं—गुरुदेव! मैं आपके आदेश का पालन अवश्य करूँगी। सीता पाँच पग अयोध्या की ओर गमन करती हैं और रुक जाती हैं। कहती हैं गुरुदेव! मैंने आपका कहा मान लिया। और उसी जगह जगत-जननी माँ सीता धरती हो जाती हैं। धरती में समा जाती हैं। राम पुरुष होकर भी प्रकृति को अपनी विशाल बाहुओं में नहीं समेट पाते हैं। ऋषि ने इन्हीं संदर्भों में कहा—माता भूमिः पुत्रोऽम् पृथ्वीव्याः।

राम बारह कलाओं से पूर्ण पुरुषोत्तम हैं। सीता माँ हैं। धरती के गुणों से संपन्न हैं। वह जननी हैं। धरती सूर्य का अंश होते हुए भी स्वतंत्र सत्ता के रूप में हैं। लेकिन धरती को चाह बनी रहती है—सूर्य के हजार-हजार रश्मि-वलयों को धारण करने की। धरित्री को पता है कि सूर्य के कारण ही उसे छह ऋतुओं का उपहार और घन-शावकों का परिवार मिला है। बादलों की छाया में धरती उत्सवा बन जाती है। रवि-रश्मियों की ऊष्मा भूमि को अंकुरण-पूर्व का भराव और क्षमता देती है। भूमि और भूमि का जीवन सूर्य का आकांक्षी हो जाता है। ये अंश और अंशी हो जाते हैं। इसीलिए चाहे अशोक वाटिका हो या वाल्मीकि का आश्रम, माँ जानकी, राम का निरंतर स्मरण करती हैं। उन्हें अपने जीवन की पूर्णता का प्रमुख मानती हैं। अपने संघर्ष में अटूट और अपराजेय बनी रहते हुए, वह राम को भी पूर्णता देती हैं। राम कहाँ पूरे होते हैं—सीता के बिना? शक्ति के बिना कोई भी तत्व कैसे पूर्ण हो सकता है? राम का रामत्व ही सीता के साथ होने में है। सूर्य की ऊष्मा और उजास की सार्थकता और पूर्णता इसी में है कि उससे धरती रोशन हो और जीवन गतिमान बने। इसीलिए माँ घट्टी चलाते हुए लोकगीत गाती हैं और सूर्य से निकल आने के लिए पुकार लगाती हैं।

संपूर्ण वृत्तांत में संघर्ष की हार और जिजीविषा की जीत ही दर्ज होती है। भूमि का कष्ट, सीता का दुःख और माँ के जीवन का संघर्ष ही इस गीत में हारता है। एक लंबी लड़ाई माँ ने लड़ी है, तब जाकर आज वह अँधेरे को पीसकर सूर्य का आमंत्रण हाथों में लेकर खड़ी है। माँ को घर से लेकर भूमंडलीय व्यवस्था में अपने संघर्ष को परास्त करते हुए उसे पुरुष की बराबरी में ही नहीं, बल्कि उससे आगे चलना है। नयी भू-समाज-संरचना में यह स्थिति विवशता की न होकर, सहज बने। मन में एक खुशबू मातृत्व के जन्म पर झरी थी। एक खुशबू माँ के कंठ से लोकगीत की फूटन से झरी थी। एक खुशबू संघर्ष की हार पर झरी थी। अब खुशबू विश्व-स्थिति में माँ की विजय पर झरेगी। मोगरे की कली खिलकर रातभर चाँदनी को पीती रही है और घर-आँगन के मन में धरती की खुशबू-सी झरती रही है।

❑

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अकेले होते चले जाना

घर-परिवार में सबके बीच रहते हुए भी कभी-कभी बहुत अकेलापन लगता है। दहाई होते हुए भी इकाई होने का खुटका जोर पकड़ने लगता है। बाहर-बाहर हाथ-पाँव आँख-नाक सबके साथ होते हैं। भीतर का मनसुक्खा अपने गुंताड़े में अकेला घरकुल बनाया करता है। अपने भीतर ही चीजों को इधर-उधर उठाता-धरता रहता है। पट्टी पर छोटी लकीर खींचकर हवा, पानी, मिट्टी, आग और आकाश लिखता है और नाभि की जगह मुस्कुराता है—इतनी बड़ी दुनिया और जिनगी की छोटी-सी लकीर। फिर बच्चे के हाथों में पकड़े हुए खिलौने का विश्वास कि यह लकीर छोटी ही सही, पर मेरी तो है। मैंने खींची है, अपनी पट्टी पर। बच्चे के हाथों का खिलौना छूटता है। खिलौना मिट्टी का। पट्टी मिट्टी की। पेम मिट्टी की। लकीर पर धूल छार। एक दिन समय का बेनिशान पोछा लगता है। मनसुक्खा फिर अकेला हो जाता है।

रेत पर बने पाँवों के निशानों को लेकर क्या यादों के चेहरों पर से पसीने की बूँदें पोंछी जा सकती हैं? एक-एक घटना की धार जीवन के जलाशय में ठिलती है और लबरेस भर जाता है। बूँदें अकेली होती हैं। कई बूँदें मिलकर धारा बनती हैं और धाराएँ— जलाशय, झील, समंदर। ये सब बूँद के अस्तित्व की बड़ी आकृतियाँ हैं। बूँदों का धारा बन जाने का मतलब होता है—प्रवाह बन जाना। यह प्रवाह ही महत्वपूर्ण है—उतना ही महत्वपूर्ण जितना अभी-अभी जन्मे बालक का हाथ-पाँव हिलाकर किलकारी मारना। जितना मैदान में चरते हुए बछड़े का पूँछ उठाकर चौकड़ी भरना। जितना सागौन-वनों से आती हुई हवा का घास के पाँवों के घुँघरू बन नाच उठना। जितना किसान को अपने खेत में बोई फसल का पहला अंकुर दिख जाना। जितना नर्सरी में जाते हुए बच्चे का पट्टी पर कोई पहला शब्द सही लिख देना। जितना किसी राह का नदी के घाट पर आकर बिछ जाना। जितना अँधेरे के पन्नों पर कोई उजास का ललित निबंध लिख देना।

ये सब अकेलेपन से निष्कृति के दरवज्जे हैं। अपने अकेलेपन को विराट

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अकेलेपन में मिला देने का बावरापन है और फिर अकेले होते चले जाना है। ओंकारेश्वर में नर्मदा पर बना पुल या ऋषिकेश में गंगा पर बने लक्ष्मण-झूला तथा राम-झूला आकाश में अपनी झूल को लेकर कितने अकेले हैं? अपने तनाव में मुक्त होते हुए किनारों तक; उन किनारों तक, जहाँ चहल–पहल है। जहाँ अकेलेपन को भीड़-बस्ती में बसाने का नक्शा बन रहा है। उन्हीं किनारों को ये पुल मिलाते हुए नर्मदा और गंगा के किनारों के सूनेपन को उत्सव देते हैं। गंगा ऋषिकेश के बाद अपना अकेलापन तोड़ती है। वह अपने अकेलेपन को इतना उदात्त विस्तार देती है कि समूची मानव-सृष्टि की सांस्कृतिक प्रतीक बन जाती है। अकेलापन जब संस्कृति के सोपान रचता है तो वह वैदिक ऋचा होती है। अकेलापन जब अपनी पूरी ऊँचाई में खड़ा होता है तो वह हिमालय होता है। अकेलापन जब धारा-धारा बनकर बहता है तो वह गंगा होता है। नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, यमुना होता है। वह किसी भी गाँव-शहर से सटकर बहनेवाली नदी होता है।

शिखर बनने के पीछे यदि अहमन्यता का गरूर है, तो शिखर का अकेलापन निखट्टू सिद्ध होता है। शिखर भले ही समझता रहे कि मैं अपनी ऊँचाई में सारे इर्द-गिर्द को बौना कर रहा हूँ, पर समय की समीक्षाओं के मानक भिन्न हैं। अपने आसपास के प्रमाण; मात्र ऊँचाई को लेकर हैं या उस ऊँचाई के भीतर जो भराव है, जो ठोसपन है, जो रस–रस फूटकर बहने की ममता है, उसे लेकर है। ऐसी स्थिति में यह तय करना जरूरी है कि उस ऊँचाई या उस ऊँची नाप के पास, अकेलेपन का शिखर है या शिखर का अकेलापन है। पहली स्थिति में शिखर बनने के लिए अकेलेपन को माध्यम बनाया जाता है। दिखते-दिखते, लोगों को सीढ़ी बनाते-बनाते शिखर हो जाने की चतुराई है। दूसरी दशा में अपनी भीतरी उठान के जरिये एक साधारण-सा, उपेक्षित-सा भूमिखंड धीरे-धीरे शिखर बन जाता है। वह अपनी ठोस कद-काठी में अकेला होता है। फिर भी वह अकेला नहीं रह पाता। वह अपने ऊपर एक वानस्पतिक वैष्णवी दुनिया उगाता है। अपने भीतर के सत्व की घनीभूतता में फूटकर निर्झर बन बहने लगता है। अपने अकेलेपन को सर्जक की रेखाओं में तब्दील कर धरती पर जीवंत आकृतियाँ बनाता है।

प्रसिद्ध चीनी शासक माओ 'लाल किताब' में कहता है—"सत्ता बंदूक की नली से निकलती है।" दो स्थितियाँ होती हैं–एक तो सबको साथ लेकर चलते हुए भी अपने अकेलेपन के प्रति चौकस रहना। दूसरी, सबके द्वारा धीरे-धीरे काटते हुए अकेले कर देना। एकांतिक बना देना। या धीरे-धीरे स्वयं अकेला हो जाना। पहली करतूत राजा बनकर विजय की श्री अपने माथे पर लगाने की लालच का परिणाम होती है। सब साथ हैं। सबको अपने साथ रखने के लिए सेनापति, मनसबदार,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सिपहसालार, महामंत्री, सलाहकार के पदों के टुकड़े फेंक रखे हैं। यह सब इसलिए है कि आप राजा बने रहें। या बना दिए जाएँ। या आपका राजापन सुरक्षित रहे। आप आगे बढ़ें और ये सब बापड़े इस्तेमाल होते रहें। आप खास बनते जाएँ और आम की आमदरफ्त एक दिन बंद हो जाए। यह बुना गया अकेलापन आपकी किलेबंदी होता है। खुद के ही द्वारा बनाया गया बुर्ज। षड्यंत्र की बुनियाद पर रचा गया—यह अकेलेपन का खासपन पत्थरों की संधियों में थोड़ी-बहुत जड़ें फोड़कर कुछ दिन हरियाता है। लेकिन जब समय के बैसाख-जेठ की तेज लू, आँधी-अँधड़ चलते हैं तो पत्तियाँ झुलस जाती हैं। तब वह जड़हीन पादप अपने नीचे जमीन नहीं होने की दशा में अपने ही द्वारा बनाए गए अकेलेपन की उन पाषाणी कैदगाहों में दम तोड़ देता है। इसीलिए जड़ें जमीन में होना जरूरी हैं। षड्यंत्रों के कोट-कँगूरों की नियति खंडहर होना है। ऐसा अपने तईं बनाया गया चालाक अकेलापन खुद की कब्रगाह बन जाता है। इस कार्य में छले गये लोगों की खट्‌टी-मिट्‌ठी दुआएँ भी असर डालती हैं।

दूसरी स्थिति में अकेलापन उस पर्वत का होता है, जो समय की चुनौतियों को झेलता हुआ आकाश की माप बन जाता है। हिमालय बन जाता है। अपने में भरा-पूरा होता हुआ धरती की रस–रस मिठास का उछाल बन जाता है। फूट पड़ता है सहस्र-सहस्र जलधाराओं के रूप में। प्राण-धाराओं के रूप में। वानस्पतिक भागवत कथाओं के रूप में। पक्षियों की स्वर-बाँसुरी के रूप में। यह भीतर का संपन्न अकेलापन कोटि-कोटि प्राणों का अकेलापन बाँटने के लिए बिछल जाता है। तुलसी, सूर, मीरा, कबीर, नानक, जायसी, रवींद्रबाबू और गांधी का अकेलापन ऐसे ही असंख्य प्राणों की जड़ों में पानी सींचता है। रवींद्र बाबू यदि कहते हैं—"एकला चालो रे" तो सृजन की वेदना को अकेले सहते हुए उसके फल को निस्वार्थ भाव से सबमें बाँट देने की ही उद्घोषणा करते हैं। वे सब अपने अकेलेपन में स्वयं को ढोते नहीं रहे, बल्कि स्वयं से मुक्त होते रहे। पर्वत का झरना बनकर बहना ही कठोरतम का विगलित होना है। ज्ञान भी कठोर होता है। लेकिन वह सर्व हितैषी रचना बन जाता है, तो व्यक्ति पानी-पानी हो जाता है। कवि की भाषा में बहता नीर हो जाता है। असली आदमी को भले ही जमाने की धूल-भरी आँधियाँ उखाड़कर फेंक देना चाहें, उसे काटकर रख देना चाहें, उसे नितांत अकेला कर देना चाहें, उससे हँसिए-हथौड़े की तमीज में बात करना चाहें, उसे समय से कटा हुआ घोषित कर देना चाहें, उस पर कई–कई तोहमतें लगा दी जाएँ, तब भी वह अपने अकेलेपन में और छतनार होता चला जाता है। पेड़ की जितनी काँट–छाँट करें, वह नयी कोंपलों में दमखम के साथ फैलता है। चुम्मरदार होता है, उतनी ही गहरी उसकी जड़ें समाती चली जाती हैं और वह उतना ही स्वयं से बेपरवाह तथा फक्कड़ होता चला जाता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अकेले होते चले जाने का यही फक्कड़पन रचनाकार की नियति है। जितने भी रेखांकित किए जा सकनेवाले चरित्र हैं, सबमें यह एकांतिक मस्तमौलापन नजर आएगा। अकेलेपन की सही दिशा में बढ़कर ही कला के साधक ने सृष्टि के दर्शन को व्यक्ति की हथेली पर खुली किताब की तरह रख दिया है कि—देख, पढ़ और समझ कि आदमी के दर्शन से बड़ा सृष्टि का दर्शन है। आदमी तो इस निखिल ब्रह्मांड के रथ पर बैठा एक सदस्य मात्र है। इस रथ में और भी बहुतकुछ, बहुत-से बैठे हुए हैं। उसे समझने के लिए आदमी के साथ-साथ और भी तमाम जड़-चेतन को समझना होगा। इसके लिए ऋषि का एकांत चाहिए। ऋषि एक का अंत करके ही एकांत पाता है। ऋषि के एकांत से चिंतन का प्रवाह फूटा। ऋचाएँ फूटीं। जीवन-बोध बहा। एक राह तय हुई कि आदमी यदि हो, इस तरह का हो। ऋषि ने अपने एकांत भाव को उलीचा और बरसा दिया—पृथ्वी-अंतरिक्ष के ओर-छोर में बरखा की तरह।

संघर्षशील किंतु ईमानदार व्यक्ति युगों के मोड़ पर भले ही अकेला खड़ा हो, पर वह अपनी जड़ों में गीला है। हरा है। गहरा है। सो बचा हुआ है। इसने आदमी को रिश्तों में ही नहीं देखा। आदमी को उपयोगी वस्तु की शक्ल में नहीं देखा। साम्राज्य, यश, पताका, ध्वजा, कीर्ति को बच्चे के हाथों में पकड़े हुए खिलौने से ज्यादा महत्व कभी नहीं दिया। खिलौना टूटता ही है। इसे मालूम है कि हथेलियों पर उचरी रेखाओं से बड़ी भाग्य-लिपि नहीं होती। आदमी-आदमी के दिलों की जमीन से महीन कोई धरती नहीं होती। इसलिए असली आदमी ने अपने अकेलेपन में बजाई मुरली से पूरी वृंदावन संस्कृति रची है। एक महारास किया है। एक-दूसरे में अपने एकांत को खो देने, डुबो देने, मिला देने की आपसदारी निभाई है।

समय और साहित्य किसी की मिल्कियत नहीं होते। मुट्ठी में पानी रह जाए, पर समय नहीं। जिस क्षण रचना भीतर से कागज पर वाणी में आती है, दूसरे क्षण से ही वह सबकी हो जाती है। नर्मदा मेकल से निकली है, लेकिन वह मेकल की ही सिर्फ नहीं है। वह जन-जन की माँ है। अपनी रचना से मोह ठीक नहीं। ब्रह्मा ने सरस्वती को बनाया। उस पर ही रीझ गए। परिणाम अच्छा नहीं हुआ। अकेलेपन के उत्सर्ग के रूप में जो रचना, जो कार्य किया जाए, तत्क्षण उससे अलग होने में ही सार है। लोककवि ने अपने अकेलेपन को गुनगुनाहट दी। गीत बन गया। कवि छूट गया। अकेलापन लोकगीत बनकर बह गया। कोई नाम नहीं। कोई छाप नहीं। लोग सड़क बनाते हैं। नाम रख देते हैं। लेकिन जिन लोगों ने पगडंडियाँ बनाईं, गड़वाटें बनाईं उनके नाम की कहीं कोई तख्ती नहीं टँगी है। इतिहास के गलियारों और सड़कों पर कहीं कोई डौंडी नहीं पीटी गई। इतनी निर्ममता हो अपनी रचना के प्रति, तब कहीं अंतर का शून्य गूँज बनकर फैलता है। यही वजह है कि सही राह और असली

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

प्रबोधन लोकगीत ही देते हैं। या वह साहित्य देता है जो स्वांतः सुखाय होते हुए भी सुरसरि समान सबका हितकर बन जाता है।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आरती की महाध्वनि में अपने भीतर के कूड़े-करकट को बाहर निकालकर फेंकते हुए समूचे व्यक्तित्व का अनुगूँज मात्र हो जाना दुर्लभ होता है। साहित्य पढ़ते-पढ़ते साहित्य का भाव मात्र हो जाना ही दुर्लभ होता है। किसी व्यक्ति से छलछलाई आँखों में प्यार लिए भुज भर मिलते हुए देह नहीं मात्र हृदय बनकर रह जाना और दुर्लभ होता है। पर यदि यह होता है तो इस देश की हवा-पानी-मिट्टी-बानी में घुल जाना है। अकेलापन तब साधन बन जाता है। अकेलापन तब सध जाता है। व्यक्ति भीतर से एकदम स्पष्ट हो जाता है। ऋषिकेश में गंगा की गहराई की तरह। जहाँ तल तक सबकुछ साफ-साफ दिखाई देता है। यह अकेलापन आत्मबोध बन जाता है। अपने महाप्रस्थान की बेला में पीपल के नीचे बैठे कृष्ण हो जाता है। तब बच्चे के हाथ से छूटकर गिरे हुए खिलौने के टूटने पर न दुःख होता है और न सुख।

❑

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पानी है अनमोल

कैसा जमाना आया कि जिस देश में दूध-दही नहीं बिकता था, वहाँ अब पानी बिक रहा है। गरमी में लोग जगह-जगह प्याऊ खुलवाते थे, वहाँ अब पानी के 'पाउच' बिक रहे हैं। जहाँ नर्मदा किनारे के लोग नर्मदा के जल को अमृत मानकर आचमन करते थे, वहाँ उसी पानी को बोतलों और पाउचों में भरकर बेचा जा रहा है। जहाँ प्यासे को पानी पिलाना पुण्य माना जाता है, वहाँ लोगों को प्यासा मारकर पाउच के जरिए उनकी प्यास और पानी का व्यापार किया जा रहा है। जहाँ का राजा सड़क बनाने के साथ ही पेड़ लगाना और जगह-जगह कुँए-बावड़ी खुदवाकर यात्रियों के जीवन के पानी को न मरने देने का संकल्प लेता था, वहाँ अब पाइप लाइनों का पानी कारखानों में जाकर बोतलबंद पानी के रूप में बाहर आ रहा है। यह मनुष्य के 'जल-प्राप्ति के नैसर्गिक अधिकार' का हनन है। मनुष्य अपने बौद्धिक अर्थ-सोच में इतना खूनी हो जाएगा, यह कल्पना भी नहीं की थी। पानी बिकेगा और उसके कारोबार के चलते सामान्य जन के चेहरे का पानी उतार दिया जाएगा, ऐसा किसने सोचा था?

जेठ तप रहा है। धरती जैसे भट्टी हो गई है। मैं मोटर की खिड़की से देखता हूँ—भरी दोपहरी में बिजली के तार पर नीलकंठ बैठा है। नीलकंठ बैठा है चुप और उदास। वह धरती पर मौसम की चुनौती को स्वीकार करता हुआ जीवन के पानी को बचाए हुए है। मुझे यह नीलकंठ भारतीय जन का सच्चा प्रतिनिधि मालूम होता है। यह व्यवस्था को मौन रहकर सहता है और व्यवस्था से उपजी आँच को चुनौती भी देता है। एक दूसरा दृश्य मेरे सामने है। मैं रेल की खिड़की से झाँकता हूँ। रेल नर्मदा के पुल को पार करती है। विंध्याचल और सतपुड़ा के सूखे और दरके अंचल और वनांचल में पानी का टोटा पड़ा हुआ है। पुल के नीचे गहन गंभीर नर्मदा पत्थरों पर पानी के छंद लिख रही है। मेरी आँखों का तारल्य कपोलों पर से लुढ़ककर वाष्प हो जाता है। नर्मदा को इस भीषण गर्मी में इतनी समृद्ध देखकर लगता है कि सारी विपरीत स्थितियों के बीच भी माँ की छाती का दूध हरा है। यह नदी जीवनवाही संस्कृति है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लेकिन मैं नर्मदा पार करते ही देखता हूँ कि अगले स्टेशन पर प्लास्टिक की थैलियों में पानी बेचा जा रहा है। मेरा सारा दर्शन जमीन पर आ जाता है। मेरे सारे अच्छे विचारों के कंठ सूखने लगते हैं। दिमाग भन्ना जाता है। नर्मदा के जल को बेचा जा रहा है। कुँए-बावड़ियों को कूड़ा-घर बना दिया है। नलों से टपकते पानी में जीवन के कई-कई बेईमान खेल खेले जा रहे हैं। आदमी का परोपकार देश से बाहर निकल गया है। धरती का पानी क्या सूखा, जीवन का तारल्य भी वाष्प हो गया है। पानी का बिकना सृष्टि के एक तत्व का व्यापार में तब्दील हो जाना है। सृष्टि के लालित्य का करेंसी में बदल जाना है। एक तरल गति का बोतल में बंद होकर कारोबार बन जाना है। एक स्वच्छंद तत्व को पिंजरे में कैद करना है। कुल मिलाकर मनुष्य के निसर्गगत अधिकार की देखते-देखते हत्या कर देना है। मज़े की बात यह है कि हम-आप बेखबर हैं। बेपरवाह हैं। पाउच का पानी चूसकर और बोतल को मुँह में अड़ाकर अपने विकास पर गुमान कर रहे हैं। अपने ही चेहरे के पानी को रुपया में परिवर्तित होता देखकर धनी और ऊँचे खरीददार होने के पोचे सोच से भरे जा रहे हैं।

भई, कुछ भी हो, पर यह सच है कि जगह-जगह मोटर अड्डों, बाजारों, रेलवे स्टेशनों और रेलों के अंदर पाउच और बोतल-बंद पानी बिक रहा है। पानी की दूकानें सजी हैं। मेरी जानकारी में निमाड़ के दो गाँव ऐसे हैं जहाँ अभी भी दूध नहीं बिकता है। ऐसे और भी गाँव हो सकते हैं। पर उसी क्षेत्र और देश के अन्य हिस्सों में पानी बिक रहा है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है।

दुर्भाग्यपूर्ण इसलिए कि आनेवाले समय में शायद झीलें नीलाम होंगी। तालाबों पर 'पानी' के उद्योगपतियों का कब्जा होगा। नदियों के घाटों पर अलग-अलग कंपनियों के नामपट्ट और चेतावनी लिखी रहेगी कि यह घाट और इसका पानी अमुक की संपत्ति है। तब नदी–स्नान और अनुष्ठान धरे रह जाएँगे। यह धन आदमी को चींटा बनाकर कहाँ और किस तरह दबोचेगा, यह गाफिल आदमी को पता नहीं है। आज रेलवे स्टेशन के नलों में पानी मिल भी रहा है, कल को क्या निश्चित है कि यह शीतल धार आदमी की अँजुरी में आने के बजाये बोतल में बंद होकर प्यास को ललचाएगी। आपकी गाँठ में पैसा है तो खरीदिए, अन्यथा मर जाइए। वैसे भी धरती पर बहुत भार बढ़ गया है। और फिर गरीब को क्या पानी और क्या मौत? महत्ता तो धनपतियों की है। खासकर उनकी; जो नव-धनाढ्य हैं। जिनके पास पानी के माध्यम से पैसा पानी-सा बह रहा है। जो दूसरों के जीवन का पानी मारकर अपना पानी बचाने में लगे हैं। जो इस षड्यंत्र में शामिल हैं कि धरती पर सहज उपलब्ध पेयजल गंदा हो जाए या कम हो जाए और लोग उनके

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

द्वारा तैयार किया गया बोतलबंद और पाउच का पानी पीने और जीने के लिए मजबूर हो जाएँ। यह 'जल-माफिया' चंबल के बीहड़ों में नहीं महानगरों के जंगलों में डकार रहा है।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पानी से जुड़ा आदमी का धरम-करम है। पानी से जुड़ा ईमान है। पानी से जुड़ा मन है। तन है। पानी से जुड़ा संस्कार है। पानी से जुड़ा मान-सम्मान है। जीवन की आभक्त है। तरलता है। सरसता है। आँखों में ओज है। प्राणों में शक्ति है। उम्मीदों में हरापन है। धूप-छाँह के बीच कहीं प्यास के बुझने की अनसुलगी आस है। पास में पानी है तो बीहड़ों को पार कर जाने की हिम्मत है। जीवन में पानी है तो संघर्षों को परास्त करने का विश्वास है। यह विश्वास, यह आस, यह शक्ति, यह हरापन, यह ओज, यह आभ सबकुछ पानी से मिला है। वह पानी किसी की कृपा से नहीं, बल्कि प्रकृति से मिला है। मुफ्त और पर्याप्त। इसलिए कि यह सृष्टि चलती रहे। सृष्टि में संतुलन बना रहे। पंचतत्व-रचित यह सृष्टि हँसती रहे। बूँद-बूँद से जलाशय भरें, नदियाँ बहें और समुद्र लहराएँ। बदरा बरसे और जीवन सरसें। पाप तरसे और पुण्य हरसे। धरती की प्यास गहराएँ और आकाश में घटा मँडराए। कोटि-कोटि कंठ पुकारें और आकाश से नर्तित जल बूँदें उनकी आरती उतारें। पत्र-पत्र से आवाज उठे :

ओ! मेरे भैया पानी दो! पानी दो!
पानी दो गुड़धानी दो, जलती है धरती पानी दो,
मरती है धरती पानी दो, मेरे भैया पानी दो।
अंकुर फूटे रेत माँ, सोना बरसे खेत माँ,
बैल पियासा, भूखी गैया, फुदके न अँगना सोनचिरैया,
फसल बुवैया की उठे मड़ैया, मिट्टी को चूनर धानी दो।
ओ मेरे भैया! ओ मेरे भैया ...... (नीरज)

इस मनुहार पर किंतु सरलता से उतरे पानी से मनुष्य ने आपसदारी जोड़ ली। उसे अपने समाज दर्शन और विकास का आधार बना लिया। इसीलिए सारी सभ्यताएँ नदी-घाटियों में बसीं, पनपीं। उन सभ्यताओं की खुदाई में भी जलाशय, कुंड, कुँए, बावड़ी, प्याऊ, नहर आदि के अवशेष मिलें हैं। इससे पता चलता है कि पानी की समुचित और सुव्यवस्थित वितरण-प्रणाली थी तथा पानी, पानी ही था, उद्योग नहीं। पानी पाँच तत्वों में से एक था (है), वस्तु नहीं। वह प्राकृतिक उपहार था (है), रुपया-पैसा नहीं। वह स्वच्छंद था, बोतलबंद नहीं। वह जीवन की प्यास था, त्रास नहीं। वह आम था, खास नहीं। वह सहज था, दुष्कर नहीं। वह बहता हुआ था, स्थिर नहीं। वह अँजुरियों और ओकों में तो समाया, पर कारखानों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के तलघरों में नहीं। वह यात्री और राहगीर के साथ छागल और सुराही में विपदा में साथ देनेवाले साथी की तरह भरा-भरा रहा, पर पाउच में सड़ा नहीं। वह झारी में, कमंडल में जल बनकर आस्था और श्रद्धा का केंद्र बना, पर बोतल में भरकर दुकानों-दुकानों कभी नहीं सजा। इन सभ्यताओं के मनुष्य जानते थे कि प्रकृति के पाँच तत्वों में से किसी एक की भी बिक्री शुरू हो जाएगी, उसी दिन से संस्कृति की भी खरीद–फरोख्त होने लगेगी। इसीलिए उन्होंने पानी को पानी ही रहने दिया। उससे अपने दाग धोए, लेकिन पानी के सहज स्वभाव पर कोई दाग नहीं लगाया। पानी का कोई दाम नहीं लगाया।

सन् 1974 में लखनऊ गया। देखा कि वहाँ के व्यस्ततम बाजार में पानी दस पैसे का एक गिलास बिक रहा है। मेरे लिए तो यह सातवें आसमान का एक झूठ भरा आश्चर्य था। फिर 1975 में मुंबई जाना हुआ। वहाँ देखा–चौपाटी पर पच्चीस पैसे में एक गिलास पानी का बिक रहा है। और दस मीटर दूर ही अथाह समुद्र भरा है। मुझ गँवई के भीतर तो जैसे उथल-पुथल मच गई। लोग खाते-पीते, हँसते–गाते रहे, मैं इसी पीड़ा में दूबरा होता रहा कि बताओ–पानी बिक रहा है! उधर राम-कृष्ण की धरती पर पानी बिक रहा है, इधर संत ज्ञानेश्वर और नामदेव की भूमि पर पानी का मोल-तोल किया जा रहा है। मेरा मन किच्ची खा गया। सोचा ऐसी जगह क्या आना, क्या जाना, क्या घूमना जहाँ पानी बिक रहा हो। ये लोग मनुज हैं या कुछ और? भाड़ में जाए ऐसा विकास। ऐसी सभ्यता। तुरंत लौट आया। और जब सन् 2000 में नासिक के पास त्र्यंबकेश्वर दर्शन कर गोदावरी के उद्गम पर गया तो पहाड़ी चढ़ाई के दोनों किनारों पर पानी के सौदागर बैठे मिले। एक करुणा, नदी के रूप में जल बनकर बह रही है, वहीं एक कठोरता जल-संस्कृति को धंधा बनाकर ठौर-ठौर बेच रही है। अब तो पूरे देश में यहाँ-वहाँ सब जगह जल-संस्कृति को पाउचों और बोतलों में बंद करके प्यासे की प्यास की कीमत वसूली जा रही है। भारत भूषण की पंक्तियाँ याद आती हैं :

इस मनुष्य को धन की ये अंधी दौड़ कहाँ ले जाएगी,
शायद सोने की ईंटों में, ज़िंदा-ज़िंदा चिनवाएगी।

पिताजी कभी-कभी परिस्थितियों के अनुसार कहते हैं, "बाजार में फलाँ अनाज इस बार तो 'पानी के मोल' बिक गया। किसान की वस्तु की कोई कीमत नहीं और जो कारखानों से बनकर चीजें आती हैं, उनके ऊँचे दाम हैं।" तात्पर्य यह कि उस वस्तु का कोई मूल्य नहीं मिला, या मिला भी तो नगण्य। लगता है आज यह कहावत भी अपनी अर्थवत्ता खो चुकी है। आज पानी का छोटा-सा पाउच एक-दो रुपये में और कंपनी उत्पाद बोतल-बंद पानी सात से दस रुपये में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE 2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बेचा जा रहा है। आज पानी पिलाकर पुण्य नहीं कमाया जा रहा है, पानी बेचकर पैसा कमाया जा रहा है। यह सीधा-सीधा प्राकृतिक संपदा पर डाका डालना है। पानी को बेचना याने मनुष्य के जीवन (प्राणों) का मोल करना है। आदमी! तू कितना नीचे गिर गया है।

हमारे पास पानी के कितने रंग हैं। कितने संदर्भ हैं। कितने संबंध हैं। कितने संवाद हैं। कितने पनघट हैं। कितने घाट हैं। कितनी यात्राएँ हैं। कितनी स्मृतियाँ हैं। कितने अनुष्ठान हैं। कितने पर्व हैं। कितने प्रसंग हैं। कितने उत्सव हैं। कितने अर्घ हैं। कितने आचमन हैं। कितने तीर्थ हैं। कितने विसर्जन हैं। कितने चितंन हैं। कितने संन्यास हैं। कितने योग हैं। कितने संयोग हैं। कितने राग हैं। कितने कलकल हैं। कितने कलरव हैं। कितने स्नान हैं। कितने दीपदान हैं। कितने फूलों से भरी झबरिया हैं। कितने मंत्रों से भरी डगरिया हैं। कितनी धाराएँ हैं। कितनी सहस्रधाराएँ हैं। कितनी पद-यात्राएँ हैं। कितनी परिक्रमाएँ हैं। कितनी मानताएँ हैं। कितनी कथाएँ हैं। कितनी गाथाएँ हैं। कितनी कंदुक-क्रीड़ाएँ हैं। कितने वंशीरव हैं। कितने मिलनातुर त्रेता हैं। कितने प्रतीक्षारत द्वापर हैं। कितने वरुण, जलधार बनकर बहते रहे। कितने इंद्रधनुष सपनों में रंग भरते हुए आकाश होते रहे।

हमने पानी के प्राचीर नहीं बनाए। पानी को प्राचीरों से निकालकर प्यास के खेत सींचे हैं। हमने घर की छत या आँगन में रस्सी से जलपात्र लटकाकर पंछियों को पानी पिलाने का कर्म किया है। चाहे कोई पथिक हो या अमीर खुसरो, वह जब भी पनघट पर आया है, पानी पीकर तृप्त हुआ है। इससे भी कहीं अधिक मन को तृप्ति मिली है और नयनों की प्यास बुझी है। गागर में से पानी राही के ओक में गिरा, साथ ही एक अनकहा संवाद भी तरलायित हुआ और नयनों से नयनों के गोपन संभाषण में खट्ठा-मिट्ठा रिश्ता जुड़ गया। उस जलधार के साथ खुसरो की कविता भी फूटी। प्रश्नों के उत्तर मिले और काव्य-सरिता भी बही। प्यासे को पानी पिलाकर और राही को घर पर थोड़ा रोककर उससे संवाद करने में सामाजिकता का विस्तार और पुण्य की तलाश की जाती थी। जो पानी पीकर जाता था, वह याद रखता था कि उसे भी इसी तरह जल से प्यासे की प्यास बुझानी है। इस तरह एक संस्कार अपनी संस्कृति में विस्तार पाता था। मनुजता मुसकुराती थी। और रहीम की कलम गा उठती है –

रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरै, मोती मानुस चून।

सोचता हूँ पानी को प्राचीरों में कैद करके क्या मनुष्य उबर पाएगा? मोती के संदर्भ तो दिवास्वप्न हो गए। चूना कुछ-कुछ बचा है। पर मनुष्य बिना पानी के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कैसे जिएगा? खरीदा हुआ पानी और खरीदी हुई संस्कृति से जीवन न तो चलता है और न ही सँवरता है। हमने धरती का मोल-भाव किया। हमने आकाश को इन्सैट्स और उल्का-पिंडों से भर दिया। हमने वायुमंडल को जहरीली गैसों से भर दिया। हमने आग को बिजली के रूप में भारी दामों पर बेचना शुरू कर दिया। रोशनी की कीमत वसूली। और अब पानी पर डाका डालना शुरू कर दिया है। मनुष्य! तू कितना सत्यानाशी है कि तूने पंचतत्वों को भी धन से तौलना आरंभ कर दिया है। तू अमित प्रतिभासंपन्न है, लेकिन तेरी बौद्धिक अपच और अकूत धनलिप्सा ने तुझे बावरा बना दिया है। सोच! पानी को बेचकर क्या तू अपने जीवन में पानी बचा सकेगा? यह कार्य होगा वर्षा-जल के अधिकाधिक संग्रहण और उसके उचित उपयोग से। वो देख! उधर काली घटा घिरने लगी है। ❑

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

घर-बाजार और कबीर

बाजार कहाँ नहीं है? बाजार कब नहीं था? बाजार का रूप बदलता रहा है। बाजार की गलियाँ कभी चौड़ी और कभी तंग होती रही हैं। जब गली में गुब्बारेवाला नहीं आता था, तब भी गुड़िया खिलौनों के लिए मचलती रही है। बाजार कभी राजा की पगड़ी पर फबता रहा तो कभी सेठ की तिजोरी से निकलकर डाकुओं की दुनाली से छार-छार होता रहा। जब से मनुष्य की जीने की इच्छाओं का संसार के संबंध में विस्तार और जुड़ाव होता गया, वस्तुओं का रौब बढ़ता गया। व्यक्ति बाजार का गुलाम बनता गया। यह बात प्रकृति से जुड़ी होकर भी प्रकृति के खिलाफ है। प्रकृति ने प्रत्येक वस्तु और व्यक्ति को स्वतंत्र पैदा किया है, लेकिन जब-जब बाजार पुकार लगाता है, मनुष्य और वस्तुएँ अपनी स्वतंत्रता को अनायास खत्म कर विवशता के पतले धागे में स्वयं को बाँध लेती हैं। मनुष्य वस्तुओं के पीछे भागता है और पदार्थ उसके आस-पास घेरा बनाते रहते हैं। एक चक्रव्यूह बनता-टूटता रहता है। मनुष्य अभिमन्यु की तरह उसमें धँसता है और अक्सर अभिमन्यु की तरह ही हारता भी है।

हार-जीत तो व्यक्ति की पलकों के गिरने-उठने की तरह है। यह अनिवार्यता भी है। इसी में से संघर्ष की राह कभी छिपती, कभी स्पष्ट होती चलती है। बाजार व्यक्ति को संघर्ष की ओर प्रेरित करता है। कबीर को भी प्रेरित बाजार ने ही किया था। पर दूसरे ढंग से किया था। दो भाव होते हैं—एक राग, दूसरा विराग। हमें बाजार को देखकर राग होता है। मोह उत्पन्न होता है। बाजार के साथ मिलकर चलने, उसमें खड़े होने और उसमें गुम हो जाने का एक नशा लेकर हम जीते हैं। दूरदर्शन के माध्यम से बाजार हमें परिचालित और बाधित करता है। पहले बाजार, बाजार में था। अब घर में आ गया है। पहले बाजार में वस्तुएँ सीमित थीं। क्योंकि जरूरतें कम थीं। आदमी के पास इतना पैसा भी नहीं था। व्यक्ति की इच्छाओं के पर नहीं फूटे थे। वे जमीन पर ही फुदकती थीं। कारण कि आदमी शनैः-शनैः मेहनत और संघर्ष करके पैसा कमाता था। वह जानता था कि पैसा कितनी मुश्किल से प्राप्त होता है। वह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

समझता था कि पूँजी का निवेश कहाँ और कितनी सूझ-बूझ के साथ करना चाहिए। उसे पता था कि एक भी पैसा बिना पसीना बहाए नहीं मिलता। उसे बोध था कि स्वयं मेहनत करके जीना स्वाभिमान है। उसे समझ थी कि एक भी पैसा निरर्थक खर्च करने का अर्थ पसीने की कितनी ही बूँदें बिनमोल बहा देना है।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राजस्थान का एक किस्सा याद आता है। एक सेठ था। उसके बारे में आम धारणा थी कि वह बहुत ही कंजूस है। एक पैसा भी उससे प्राप्त करना कठिन होता था। वह एक भवन का निर्माण करवा रहा था। भवन बनानेवाले कारीगर भी उसकी कंजूसी से खार खाए हुए थे। अतः उन्होंने उसे उसके कंजूसपने का मजा चखाने की बात सोची। कारीगरों ने कहा—"सेठजी, यदि भवन को मजबूत और सैकड़ों वर्षों तक चलनेवाली नामी इमारत के रूप में बनवाना हो तो इसकी नींव में घी डालना पड़ेगा। थोड़ा नहीं, जब तक नींव जमीन की सतह तक नहीं आ जाती तब तक तर करना पड़ेगा।" सेठजी ने जरा सोचा और कहा—"जितना घी लगे, उतना बुलवा लेते हैं।" घी बुलवाया गया और नींव में घड़े-के-घड़े उँड़ेले जाने लगे। सेठ तो कारीगरों की बातों पर विश्वास कर अपने काम में लग गया, लेकिन कारीगरों को बोध हुआ कि हम गलत कर रहे हैं। उन्होंने घी डालना बंद किया और सेठजी के पास जिज्ञासा एवं क्षमा से भरकर पहुँचे और पूछा—"हे सेठजी, एक तरफ तो आप अपने बेटे तक को भी पैसा बड़ी मुश्किल से देते हैं, दूसरी ओर आप मकान की नींव में कई घड़े घी डालने के लिए सहज ही तैयार हो गए। यह कुछ समझ में नहीं आया।" सेठ ने कहा कि बेटे की उम्र अभी छोटी है। वह उस पैसे का उपयोग अनुत्पादक कार्यों में करेगा और आप लोगों की राय अनुसार भवन की नींव के लिए घी अनिवार्य है। जहाँ जरूरी है वहाँ धन अवश्य खर्च करना चाहिए। अतः बात कंजूसी की नहीं है, धन के सदुपयोग की है। बाजार के नियंत्रण की है। सेठ की बात सुनकर कारीगरों सहित कई लोगों के दिमागों के द्वार खुल गए।

बाजार की यह समझ आज बहुत कम लोगों के पास बची है। नवधनाढ्य पीढ़ी ने बाजार को ज्यादा बिगाड़ा है। बाजार को चढ़ाने-उतारने में दूरदर्शन और अन्य प्रचार माध्यम उसी तरह तल्लीन हैं, जैसे चींटी शक्कर के टुकड़े को ले जाने में तल्लीन होती है। दूरदर्शन ही हमें घर से बाजार तय करके भेजता है कि अमुक वस्तु लाना है और अमुक कंपनी की ही लाना है। पहले व्यक्ति बाजार जाता था, दुकान पर बैठकर दस प्रकार की दस कंपनियों की चीजों की देख-परख करता था। अब ऐसा नहीं होता। अब घर से ही दूरदर्शन हमें सिखाकर भेजता है और बाजार जाकर हम फटाक से कहते हैं—फलाँ वस्तु, फलाँ कंपनी की देना। उस वस्तु को प्रायः खोलकर भी नहीं देखते। बनियान पहनने से विचारों का क्या संबंध है; यह मनुष्य को उसका

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

अनुभव नहीं, बाजार समझा रहा है। 'सादा जीवन उच्च विचार' वाली कहावत नल की प्रतीक्षा में घर से बाहर धूप में खड़ी है।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हम बाजार के संबंध में कुछ राग-विराग की भी बातें कर रहे थे। कबीर विराग के कारण बाजार के यथार्थ को समझे थे। दूसरे अर्थों में बाजार की निरर्थकता को जान सके थे। बाजार की उपादेयता घर से जुड़ी है। घर बसाना है, तो बाजार जाना ही पड़ेगा। घर से बाजार है। घर ही नहीं होगा, तब बाजार का क्या करेंगे? सारा टंटा घर का है। दुनियादारी का है। इसलिए कबीर ने पहले घर को फूँकने की बात कही। पदार्थ को समझकर उसका ज्ञान कर उसे छोड़ने की बात कही। पहले घर को समाप्त करो। बाजार की भागमभाग खत्म हो जाएगी। कबीर लकड़ी-फूस, ईंट-गारे से बने घर को फूँकने की बात नहीं कर रहे हैं। बाहरी घर बना रहने पर भी बाजार कुछ नहीं बिगाड़ पाता। जैसे कबीर का घर था, काशी का बाजार भी था और बुना हुआ कपड़ा भी था। पर कबीर को इन्होंने कभी बाँधने की हिम्मत नहीं की। कबीर अपने भीतर बसा हुआ घर जला चुका थे। जिसका भीतर बसा हुआ घर जल चुकता है, वह बाजार के बीच में भी निर्भय हो जाता है। वहाँ किसी तौल-ताकड़ी, गज-मीटर की जरूरत नहीं होती है। प्रेम का कापड़ा न ताकड़ी में तुलता है और न गज-मीटर से नपता है। बाजार को पहली चुनौती कबीर जैसे फकीर ने दी।

पर भीतर के घर को फूँकना और बाहर के बाजार को त्यागना क्या इतना आसान होता है, जितना हम कबीर के संदर्भ में समझ रहे हैं? कबीर फूँक सके थे। त्याग सके थे। कुल मिलाकर ऐसा करके वे अपने भीतर बसे लालित्य को बचा सके थे। पर हमें तो ब्रह्मज्ञान नहीं होनेवाला है। तब फिर हमें तो घर को साबुत रखते हुए बाजार को भी निभाना है। हम फकीर नहीं, साधारण जन हैं। हमारे हाथ में खँजरी नहीं, कलम है। सिर पर बच्चों की बेरोजगारी की टोकनी लदी है और पाँवों में फँसी चप्पल की बद्धी टूट रही है। उधर कोने में रखा बुद्धू बक्सा तरह-तरह के घी से तरह-तरह के पकवान बना-बनाकर बता रहा है और उसी में हिरनी-सी कमर को लचकाती युवती रेत के ढूहों के बीच तरह-तरह की साड़ियाँ लहरा रही है। उस लहराहट में पत्नी का मन लहर-लहर हो रहा है। पिताजी के चश्मे की फ्रेम टूटी है और माँ की आँख का आपरेशन करवाकर अभी-अभी जैसे-तैसे गाँव भेजा है। गाँव की नदी याद आती है तो भीतर की नदी को बचाने का जतन शुरू होता है। रसधार इन सबके बीच कैसे बहे? कैसी बचे?

बाजार की खटर-पटर के बीच झपकी लग जाती है। सतपुड़ा के घने, उँघते, अनमने, लताओं से बने जंगलों के बीच से एक कवि फेरी लगाता हुआ कह रहा है, 'जी हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ। तरह-तरह के गीत बेचता हूँ।' पोशाक से और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

व्यक्तित्व से लगा—जैसे हिंदुस्तान का स्वाभिमान परिस्थिति में फँसकर बाजार में शब्द की [illegible] उसकी लय टूट रही है। कविता की संस्कृति पूछती है—क्या गीत बिक भी सकता है? इस प्रश्न पर कवि मर्मांतक पीड़ा अनुभव करता है और बाजार के तो होश ही उड़ जाते हैं। यहाँ वस्तु बाजार में शामिल नहीं हो रही है, बल्कि शब्द की सत्ता बाजार की सत्ता से टकरा रही है। भवानी प्रसाद मिश्र 'माधुरी' नामक पत्रिका में बयान देते सुनाई देते हैं—"बहन के इलाज के लिए गीत बेचना पड़ा। लेकिन ऐसा करते हुए गहरी पीड़ा हुई।" कवि मुंबई की लोकल छोड़कर दूसरी रेलगाड़ी में धम्म से बैठ जाता है और सीधे नर्मदा के तट और सतपुड़ा के मैदान में उतरता है। यहीं से उनकी कविता कवि के 'मैं' से बाहर निकलकर व्यापक समुदाय का संबोधन और अभिव्यक्ति बनती जाती है। यह शायद नहीं, निश्चय ही साहित्य को बाजार से अलग करनेवाला साहस था।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नींद टूट जाती है। सुबह के अँधेरे की तरह सपना भी छुप जाता है। निरभ्र आकाश में बादल का एक टुकड़ा पहाड़-सा उठता है और थोड़ी ही देर में झरना बनकर बहने लगता है। वह रोके नहीं रुकता। वह झुकाए नहीं झुकता। उस बादल के टुकडें में पहाड़-सा कवि उभरा और फिर थोड़ी देर में झरने-सा झरने लगता है। आकाश की आग-हवा उसे रोक नहीं पाती। आकाश का बाजार अपना काम करता है, और गीत का झरना हजार-हजार शब्द बूँदों से झरता रहता है। हरी-हरी घास पर बूँदें पड़ती हैं और धार-धार बनकर सहस्त्र-सहस्त्र बहने लगती हैं। धरती के पत्थर, टीले, कटाव, घुमाव उससे भीगते तो हैं, पर उसे रोक नहीं पाते। कविता झरते पानी की तरह बाजार के बीच बहेगी तो जरूर, पर वह बाजार नहीं बन सकती। यदि साहित्य को बाजार के रुख के अनुसार उत्पादित कर साहूकारी की जाएगी तो वह बाजारू चीज तो हो सकेगी लेकिन वह कालिदास, तुलसी या कबीर या हजारी प्रसाद द्विवेदी या भवानी प्रसाद मिश्र की कलम की फसल नहीं हो सकती। बाजार जीवन के बंधन के लिए है। साहित्य बंधन से मुक्ति के लिए है।

❑

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पृथ्वी को बचाने की चिंता

हमने अपनी ही जेब में बिच्छू डाल रखा है। गरूर कर रहे हैं कि प्रकृति पर विजय पा ली है। विकास की ऐसी तलवार पकड़ रखी है, जिसकी मूठ में भी धार है। उस तलवार को लेकर फूलों की पंखुड़ियों पर ठहरी बूँदों से लड़ने निकले हैं। एक चमक को गायब करने पर तुले हैं। एक छंद को तोड़कर उसकी बिखराहट पर मुस्कुराना चाह रहे हैं। नदी के बीच खड़े होकर जल को बदल रहे हैं। उसके पानी में दरार पैदा करना चाहते हैं। हम अपने आसपास के विध्वंस से बिल्कुल बेखबर हैं। हमारे भीतर जुगनू और सूरज की सारी परंपरा टार्च में बदलने लगी है। हमारे हाथ में स्विच आ गया है। उस स्विच का प्रयोग सूरज के प्रतिनिधि के रूप में नहीं, अँधेरे के साथी के रूप में कर रहे हैं। अँधेरे और अँधेरे के साथी का कोई धरती-आकाश नहीं होता। उसमें सारी चीजें अँधेरा हो जाती हैं। मनुष्यसहित सारे जीव पदार्थ हो जाते हैं। आदमी औजार की तरह उपयोग होने लगता है। कमरे की थोड़ी-घणी वस्तुओं के बीच व्यक्ति भी एक वस्तु हो रहा है। कमरे के उन तमाम निर्जीवों में उसने प्रकृति की फोटो कापी भी फ्रेम कर टाँग रखी है। वह विकास कर रहा है। समय चल रहा है। व्यक्ति भी चल रहा है। व्यक्ति दुनिया में चल रहा है। वह अपनी क्रियाओं से धरती के ओर-छोर पसरा है। प्रकृति व्यक्ति की क्रियाओं में जिंदगी तलाश रही है, अपने लिए नहीं, आदमी के लिए।

1992 में 3 जून से 14 जून तक रिओ में 'धरती शिखर' हुआ। रिओ में संयुक्त राष्ट्र के पर्यावरण कार्यक्रम की ओर से आयोजित इस 'पर्यावरण और विकास सम्मेलन' में 178 देशों के प्रतिनिधियों ने धरती को बचाने की चिंता प्रकट की। वहाँ चार बच्चे भी आए थे। कनाडा की 12 वर्षीय केवरन 'सुजुकी' की धरती को बचाने की अपील ध्यान से सुनी। सुनकर कई आँखें नम हो आईं। सुजुकी ने कहा—"मैं अपने भविष्य के लिए लड़ रही हूँ। मैं दुनियाभर में भूख से बिलखते उन बच्चों की आवाज बनकर आई हूँ, जिनका रोना कोई नहीं सुनता। मैं उन बेजुबान जानवरों की तरफ से बोल रही हूँ, जो पृथ्वी पर हर रोज दम तोड़ रहे हैं। मैं अब

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बाहर धूप में जाने से डरती हूँ क्योंकि ओजोन की परत में छेद हो गया है और पराबैंगनी विकिरण हमारे ऊपर झुलसती गर्मी छोड़ रहे हैं। साँस लेते हुए मुझे डर लगता है क्योंकि मैं नहीं जानती कि कौन–सा जहर हवा में घुला होगा। अगर आप नहीं जानते कि यह सब ठीक कैसे किया जाए, तो मेहरबानी करके उसे और अधिक बिगाड़िए भी मत।"

नदी ने अपने किनारे पेड़ उगाया है। पेड़ पर बैठकर चिड़िया गा रही है। सूरज की पहली किरण आकर उस पर विश्राम कर रही है। बया ने एक पतली-सी डाल पर लटकता हुआ घोंसला बुना है। एक श्यामा गाय नदी किनारे चर रही है। बछड़ा पेड़ के नीचे चौकड़ी भर रहा है। नदी, पेड़, और पशु-पक्षी मिलकर धरती के मन के दीयला में तेल परोस रहे हैं। ये कथक करते हुए द्वापर की प्रकृति के छोटे-छोटे दृश्य प्रस्तुत कर रहे हैं। वे किसी का कुछ नहीं बिगाड़ रहे हैं। वे किसी से कुछ छीन भी नहीं रहे हैं। तुम्हारी लड़कियाँ उनके पास जाकर नदी किनारे खड़ी होकर अपनी आँखों में स्वतंत्रता आँज रही हैं। हरी दूब पर मेमने के पीछे दौड़ती किशोरी छोरी धरती के आँचल में नेह उत्पन्न कर रही है। एक दूसरी छोरी ने झाड़ पर चढ़कर फल तोड़ लिए हैं। उसका खोला रसखान हो गया है। वह दाँतों की संधियों में फलों के दूध को जाते हुए महसूस रही है। उस दूध से वह अपनी वयसंधि के पुड़ों को जोड़ रही है। नयन मूँदे वह धरती के रस से साक्षात्कार कर रही है। हवा का झोंका आकर छोरी की लटों और वृक्ष की टहनियों को छू-भर लेता है और देखते ही देखते पूरा पेड़ भरतनाट्यम् करने लगता है। धरती अपनी परिधि में उत्सवा बन जाती है।

एक अंधा आदमी आता है। उसे अपने अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देता। विचित्र व्यक्ति है वह। आँखें होकर भी हँसती-खेलती दुनिया को नहीं देख पा रहा है और अंधा होकर भी स्वयं को बराबर देख रहा है। उसके हाथ में कुल्हाड़ी आ जाती है। स्वचलित आरियों से वह धरती के कोमल अंगों के टुकड़े करने लगता है। यह खड्डूस आदमी जिस डाल पर बैठा है, उसे ही काट रहा है। जो जंगल धरती के फेफड़े हैं, जिनसे उसे प्राण-वायु मिलती है, उन्हें यह व्यक्ति घुन की तरह कुतर रहा है। जो पेड़ धरती की हवा-पानी के साधन हैं, वे ट्रकों, गाड़ियों में लदकर धमन भट्टियों, कारखानों, चूल्हों में जलकर धुँआ उगल रहे हैं। जो पेड़ पर्यावरण सुधार के कारण हैं, वे ही धुँआ बनकर प्रदूषण पैदा कर रहे हैं। सभ्यता और संस्कृति की जन्मस्थली नदियों की कहानी दुखांत हो चली है। जो नदियाँ आदमी के भीतर आस्था के छंद और ऊर्जा के गीत रचती हैं, उन नदियों के ऊपर बड़ी-बड़ी गंदी नालियों के मुँह खोल रखे हैं। जो पशु-पक्षी प्राकृतिक नियम में स्वचलित होते हुए पर्यावरण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

संतुलन बनाए हुए हैं, जो प्रकृति को नित-नया और सर्वोत्तम देते हैं, उनका शिकार किया जाकर पृथ्वी के आँगन से किलकारियाँ छीनी जा रही हैं। वसुधा की देह का वस्त्र फट रहा है। उसके बेटे ही उसकी लाज उघाड़ने पर तुले हैं। सूरज की बेटी का कलेजा जल रहा है। ऊपर ओजोन परत में छेद हो गया है। भीतर धरती के पेट की आग भूकंप और ज्वालामुखियों के रूप में करवट ले रही है। धरती के ऊपर चारों ओर आसपास आग में फँसी-सी धरती अपनी निकासी और बचाव का झरोखा तलाश रही है।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नटराज उत्सव, ओंकारेश्वर में सुप्रसिद्ध भजन गायक अनूप जलोटा नर्मदा के जल से सटकर बैठे हैं। गाते-गाते भजन में ही वे प्रकृति के उपमानों और प्रतीकों में से प्रश्न करते हैं :

जल से पतला कौन है, कौन भूमि से भारी
कौन अगन से तेज है, कौन काजल से कारी।

भजन में ही उत्तर है :

जल से पतला ज्ञान है, पाप भूमि से भारी,
क्रोध अगन से तेज है, कलंक काजल से कारी।

मेरा मित्र वाह-वाह कर तपाक से बोल उठता है--"इस भजन में एक तरफ प्रकृति है और दूसरी तरफ सीधा-सीधा मनुष्य को खड़ा कर दिया है।" मित्र ठीक कहता है। मैं मनुष्य को उसके मूल रूप में मनुष्य ही मानता हूँ। न तो वह पशु है और न ही वह देवता। उसकी मनुष्यता की हिफाजत भी वह प्रकृति ही करती है। धरती ने ही आदमी को आदमी बना रखा है। धरती पर आकर तो अवतार मनुष्य हो जाता है। मिट्टी की मौलिक गंध में सृष्टि के तंतु छिपे हैं। फूल में सुगंध की माफिक। साहित्य-रस की मानिंद। नदी के स्थिर जल में भी गति की तरह। इसलिए कवि-प्रकृति को उदाहरण रूप में आदमी की हथेली पर रखकर कहता है—देख, सुन, सोच और समझ कि इस धरती पर तुझे कैसे रहना है? और प्रकृति के साथ तेरा व्यवहार क्या होना चाहिए? जिस दोहे में उत्तर दिए जा रहे हैं, उसमें पहली बात ही इतनी मुख्य है कि उसके आ जाने से बाकी के तीनों कर्म करने से व्यक्ति बचा रहता है। जल से जमीन रसवंती बनती है। जल से अग्नि शमन होती है। जल से काजल के दाग धुलते हैं। ज्ञान का विवेकपूर्ण उपयोग मनुष्य को आदमी बनाता है। ज्ञान का अजीर्ण नहीं होना चाहिए। अजीर्ण होने की दशा में मनुष्य चाहे जो कुछ बन जाए, वह आदमी नहीं बनेगा। दरअसल सबकुछ समझते हुए भी व्यक्ति प्रकृति के प्रति लापरवाह है। सुबह-सुबह गमले में खिले फूल उसे अच्छे लगते हैं। खिड़की खोलने के साथ ही कमरे में झाँकती लता की पनीली आँखों का आमंत्रण उसे गुदगुदाता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अखबार के रविवारीय पृष्ठों की तरह तितली के रंगीन पंखों पर सवार होकर वह भी थोड़ी दूर तक उड़ जाता है। बोगनवीलिया की देह पर गिलहरी के उतरने-चढ़ने में थोड़ी देर उसकी आँखें भटक जाती हैं। शेवंती के क्रीम सरीखे फूलों में मन अनजाने अटक जाता है। और अचानक टेबल पर चाय आ जाती है। तब वह चाय के स्वाद और जीवन से गुम होती माखन की लुनाई-सी प्रकृति के बीच बिल्कुल भी तालमेल नहीं बैठा पाता।

पदार्थवादी दृष्टिकोण ने धरती को भी एक वस्तु की तरह इस्तेमाल करना शुरू किया। यहीं से हमारी नीयत में खोट पैदा हो गई। फिर क्या था, और तो और, आदमी का भी वस्तु की तरह उपयोग होने लगा। रस खतम हो गया। ऊपर-ऊपर के सोच को असल मानकर विकास की राह खोदी जाने लगी। पखेरूओं के पंख काटकर आदमी ने चाहा कि मैं उड़ूँ। इस तिर्यक इच्छा से उसने अक्षयवट को ही उखाड़ फेंका। बताओ अक्षयवट में भी उसे धर्म और पुरातनता की झाँई दिखाई देने लगी। उसे नया चाहिए। नित नया और ऊर्ध्वमुखी। मांस खाने के बाद ऊपर और ऊपर आकाश में थिगते जानेवाले गिद्ध की तरह। ऊँची उड़ान की आकांक्षा ने उसे धरती से काट दिया। या वह धरती से कट गया। ऐसी स्थिति में धरती स्वयं काट देती है। क्योंकि धरती तो माँ होती है। उसके साथ छल-छिद्र नहीं चल सकते। हमारे यहाँ धरती को माता मानने के पीछे यही भाव रहा है कि उसके बेटे उसका शोषण न करें। एक संतुलित दृष्टि विकास के पीछे हो। जो धरती की गोद में व्यक्ति को सिसकता हुआ न देखे, बल्कि बात-बात पर वसंत झरता हुआ पाये।

'वड्र्सवर्थ' प्रकृति के व्यक्त सौंदर्य में असीम परोक्ष सौंदर्य का आभास पाता है और उसी इंद्रियों से अनुभूत सौंदर्य द्वारा उसे अव्यक्त सत्य की अनभूति और अभिव्यक्ति की प्रेरणा मिलती है। भारतीय चिंतना ने भी धरती के किसी अंश को निरर्थक नहीं माना, साथ ही उसमें एक चेतन सत्ता की झिलमिलाहट बराबर अहसास की गई। एक 'चिद' बिंदु पर जाकर जड़ दिखनेवाले सारे पदार्थ भी सक्रिय हो उठते हैं। खास बात यह कि जिस तरह सारे जीवन प्रकृति में संतुलन बनाए रखते हुए पर्यावरण को जीवनानुकूल स्थिति देते हैं, उसी तरह हवा, पानी, आग, मिट्‌टी और आकाश के बीच आनुपातिक समन्वय बना हुआ है। इनमें से एक की भी मात्रा ज्यादा-कम होने पर मानव सृष्टि को खतरा है। हरेक जीव-जंतु एक-दूसरे पर भोजन या पर्यावरण की दृष्टि से निर्भर है। ये एक प्राकृतिक नियम में बँधे पर्यावरण को बचाए हुए हैं। आदमी से हो सके तो अँधेरा दूर करने के लिए एक नन्हा-सा दीपक बाल दे। हो सके तो एक पेड़ लगा दे। हो सके तो पशु-पक्षियों की पीठ और पँखों पर स्नेह-भरा हाथ फेर दे। हो सके तो नदी के किनारे खड़े होकर नदी की जिंदगी की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दुआएँ माँगे। इन पशु-पक्षियों को बचाना, अक्षयवट को बचाना, नदी को बचाना, याने धरती को बचाना है।

समुद्रवसने देवि। पर्वत स्तनमंडले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्श क्षमस्व मे।

ऋषि यह श्लोक बोलते हुए धरती पर पाँव रखता है। उससे क्षमा माँगता है। ऋषि ने धरती के अस्तित्व को सृष्टि के आधार रूप में अनुभव किया था। उसने केवल पदार्थ को नहीं देखा था, बल्कि इससे ऊपर पहुँचकर धरती के चप्पे–चप्पे में मनुष्य और प्रकृति के बीच सह-अस्तित्व की तलाश की थी। प्रकृति के साथ रहते हुए ही जीवसृष्टि की राह दूर तक खुलती नजर आई थी। उसने "जीओ और जीने दो" के दर्शन को लंबे अनुभव के बाद हथेली पर रखकर भविष्य के लिए आगाह किया था। उसकी इस अनुभव यात्रा ने धरती में से रस का स्रोत पाया था। उसने पृथ्वी को 'रसा' कहा। झूमते पेड़ों, बलखाती लताओं, गनगुनाते भौंरों, चहकते पक्षियों, चौकड़ी भरते पशुओं, बहती नदियों आदि सभी दृश्य-संसार के भीतर धरती की उम्र के तंतु खोजे थे। इसलिए वह प्रकृति को बिना नुकसान पहुँचाए अपना विकास-पथ तय करता रहा। उसे पता चल गया था कि प्रकृति रहेगी तो धरती रहेगी और धरती की सुरक्षा में ही मनुष्य की हँसी के उत्सव संभव हैं।

❑

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ज्योति का पहला तीर्थ

मिट्टी, पानी, आग से बना दीपक अपनी वर्तिका को हवा की सहेली बना शून्य में जलता रहता है। बहुत छोटी और सामान्य है—इसके जनम की कहानी, पर बड़ी मशक्कत भरी है। मिट्टी का दीपक अभी भी गाँव, मोहल्ले के किसी टापरे की चौगान में बनता है। चाक पर चढ़ता है। कुम्हार के टिप्पण पड़े हाथ इसे आकृति देते हैं। इसके जनम पर सोहर नहीं गाए जाते। शक्कर नहीं बाँटी जाती। कुम्हार के घर उत्सव नहीं होता। हाँ जब कुम्हार-दाजी की पत्नी गाँव में घर-घर दीये रखकर उसके बदले अनाज लेती है, या शहर में सड़क किनारे दिनभर धूप में बैठी बेचने के लिए हाँक लगाती है, तब कुम्हार-दाजी और उसके बच्चों के भीतर दीपक बलने लगते हैं। बारह महीने से छाया अँधेरा अनजाने छटने लगता है। कुम्हार-दाजी अचानक सरपंच से लंबी राम-राम करने लगता है। उसकी बंडी पेट पर तंग होने लगती है। उसके बच्चे, चिड़िया और कुम्हार-दाजी का गधा, ये सब मिलकर चौगान-आँगन को सर पर उठा लेते हैं।

ऐसा उस दिन भी हुआ होगा, जब आदिमानव ने मिट्टी की अँजुरी में तेल से भीगी बत्ती रख उसके छोर को उमंग और जिज्ञासा के साथ सिलगाया होगा। गुफा के घने अंधकार के बीच रोशनी का बिरवा लहलहा उठा होगा और खोजपूर्ण संतुष्टि तथा नयी राह का बीज मानव के भीतर करवट लेने लगा होगा। निश्चित ही उसी क्षण से मनुष्य, दीप और उसके लोकहितकारी उजले स्वरूप के प्रति स्वयं को कृतज्ञ पाने लगा था। यह अँधेरे की मानव की सृष्टि के द्वारा पहली हार थी। सूर्य के वंशज का यह कुटिया में पहला जन्म था। रोशनी के महीन उत्स का यह ऐतिहासिक क्षण था। संघर्ष का शंखनाद था। अँधेरे के खिलाफ पहली जय-यात्रा थी। अनजाने में मानव के सहज सर्जन द्वारा विज्ञान को चुनौती थी। निपट अकेले और अविचल चलते रहने का साहसिक प्रयास था। अपनी लघुता से रोशनी का इतिहास रचने की अदम्य इच्छा थी। आदमी की अँगुली पकड़कर सभ्यता के शिखरों तक ले जाने का शुभ मुहूर्त था। यह दीप का जन्मोत्सव मनाने की बेला थी। यह इतिहास की बड़ी घटना थी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दीप की लौ में संपन्न जीवन की संघर्ष-यात्रा है। इस भाग का अंतिम बिंदु सुबह है, जहाँ तक चलते हुए दीपक अपने अस्तित्व की लड़ाई के साथ अशुभ से जूझता है और संसार को उज्ज्वलता के साथ सूर्य को सौंप देता है। शाम से सुबह तक की यह यात्रा दरअसल न व्रत है, न संकल्प; बल्कि दीप की प्रकृति का वह ज्योतिमय पक्ष है, जो उसके निर्माण का खास मकसद है। बिना हल्ला बोले अपनी जगह से संघर्ष करते रहना उसका स्वभाव है। वह अपनी छोटी-सी आकृति की छोटी-सी ताकत में अँधरे से लड़ता है और आस्था की अँजुरी से समय-देवता को अर्घ देता रहता है।

सभ्यता और संस्कृति के पन्ने पढ़ते व्यक्ति को एक दिन लगा कि दीपक और मनुष्य अपने समय देश और वातावरण के बीच सहयात्री बनकर चल रहे हैं। एक संघर्ष-कथा दोनों की आत्मा में पल रही है। आस्था की लौ दोनों में जल रही है। अमावस के घुप्प अँधरे में हवा आँधी-तूफान से लड़ते हुए ज्योति-कणों के समुच्चय को विजय के द्वार तक साबुत बचा ले जाने का पागलपन दोनों में है। दीपक की रोशनी से अनजाने में आदमी का रिश्ता जुड़ता गया। हाथ बाती बनाकर उसकी तलहटी में तेल परोसते गए। लौ शुभ और मंगल की मनुहार करती गई। प्रेम, छाया, **रहस्य, लोक, परलोक, शून्य शिखर** गढ़, सहज समाधि से लेकर कैवल्य तक के विकट रस्तों में दीपक आदमी के साथ-साथ चलता रहा।

दीपक का जन्म एक लोकोत्सव बन गया। सभ्यता और संस्कृति के स्पंदनों में जहाँ रमणीय और इतिहास को मोड़ देनेवाले क्षण आए, वहाँ वे क्षण दीप के प्रकाश से उत्सवधर्मी बन गए। वे मांगलिक क्षण देवी आराधन के हों। रावण-मरण के बाद धरती पर सघन वैचारिक संपन्नता की पवित्रता के हों। कानन-बिहारी राम के अयोध्या लौटने के हों। धनतेरस के दिन यमराज की पूजा कर अकाल मृत्यु से जीवन को विकृत न होने देने के हों। चिकित्सा विज्ञान के देव धन्वंतरि के जन्म-उत्सव के हों। चौदस की शाम में नरकासुर के वध-उपरांत खुशी के हों। समुद्र-मंथन के समय लक्ष्मी के प्रकट होने की बिरिया में उनके आराधन के हों। खेतीहर संस्कृति के संवर्धन के बिंदु गोवर्धन पूजा के हों या भाई-बहन के शुचितर संबंधों की चरम परिणति के हों। दीप मनुष्य की सांस्कृतिक स्मृतियों की इबारत को पढ़ने में इतिहास के पन्नों से अँधेरा हटाता रहा है। यह मनुष्य, इतिहास और संस्कृति की तीन रेखाओं को जोड़ने का काम करता आ रहा है। मनुष्य के संघर्ष, इतिहास के परिवर्तन और संस्कृति के विकास में यह माटी का दीपक मिट्टी की तरह चोखा बना रहा। अपनी आस्थाओं की सौंधी गंध के साथ मौन साधना के जरिये अँधेरे के खिलाफ खुद जला और अँधेरे को भगाता रहा। आदमी की सृष्टि में यह ज्योति का पहला तीर्थ है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दरअसल ऐसा इसलिए हुआ कि दीपक ने तमाम भारतीय जीवनमूल्यों को आलोकित करते हुए रेखांकित किया है। दूसरे अर्थों में दीपक भारतीय जीवन-पद्धति का प्रतिनिधि बनकर उत्सव, साधना और ज्ञान के संवेदनशील क्षणों में आदमी के आसपास आनंद बगराता रहा है। दीपक बनानेवाले, तेल निकालनेवाले, पोनी बनाने वाले और दीप जलानेवाले को जोड़ता रहा है। सामाजिक और जातीय रिश्तों के परे मानवीय और यूँ कहें कि आत्मिक संबंध कायम करता रहा है। व्यक्ति को अपने कर्म और गाँव को अपना धर्म सिखाता रहा। गहरे सोचें तो लगता है कि इस देश के आदमी और इस देश के पर्वों पर जलते दीपक में पूरा-पूरा साम्य है। पाँच हजार साल के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक प्रवाह में कितना-कुछ बदल जाता है। पुराना छूट जाता है। नया इतराने लगता है। मूल्य तो मूल्य, आस्थाएँ बदल जाती हैं। लेकिन ऐसा भारत की जमीन पर नहीं हुआ। जो कुछ हुआ वह ऊपर–ऊपर हुआ। गुलामी के लंबे समय और सैकड़ों विदेशी राजनैतिक तथा सांस्कृतिक आक्रमणों के बाद भारत, भारत ही बना रहा। हम पर्वों और उत्सवों के आग्रही बने रहे। पर्वतों और नदियों को राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में देखा जाता रहा। घर आदमी की वासंती रचना बना रहा। कारण कि आदमी तथा दीपक दोनों ही अपनी–अपनी जगह एक ही रौ में जलते रहे।

एक स्थिति में निपट अकेले होकर घनीभूत आस्था के साथ दीपक की तरह जलना और युग के अँधरे को छाँटने के लिए कृष्ण की तरह न लड़ते हुए भी लड़ना, दोनों एक हैं। दीपक का तिल-तिल जलना एक कर्म है। आनंद तक की पहुँच है। अपनी स्थिति में निस्पृह होकर धीरे-धीरे चुकते चले जाना और ऐलान कर देना–"हम न मरिहैं, मरिहैं संसारा।" कर्म करते हुए चैन के साथ जीना और उसी सुखभाव से स्वयं को मिटा देना। यह स्थिति सहज नहीं आती है। इसके लिए दीपक और कृष्ण बनना पड़ता है। आँधी-तूफान और झंझावात में जलते रहने की अदम्य और अकंप इच्छा ने ही तो हजारों साल की गुलामी में से भारतीयता को बचाए रखा। वजह कि इस देश का गंगाराम दीप की तरह निःस्वार्थ और निष्कंप जलता रहा। मर–मर कर मल्हार गाता रहा। स्वयं मिटकर पीढ़ियों को बनाता रहा। अपने टूटे टापरे और टपकते छप्पर के भीतर उसने दीप ही जलाया। मशाल नहीं सुलगाई। जरा-सा अवसर मिलने पर चैन की बाँसुरी बजाना नहीं भूला। युद्ध करने और सबकुछ छोड़कर बाँसुरी बजानेवाला ही कृष्ण हो सकता है। हर स्थिति में कर्म के माध्यम से आनंद का अधिकारी, जुझारू कृष्ण हो सकता है। दीप इन सारे मिथकों और पर्वो के बारीक रेशों से ऊर्जा लेता हुआ अपनी मृण्मयता में शाश्वत बन गया है।

प्रकाश के नये-नये साधनों और उपकरणों के द्वारा इस संसार को रिझोने-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खिझाने के बाद भी दीपक की यात्रा अक्षुण्ण है। बिजली के लट्टुओं की चकाचौंध और आड़ी-तिरछी लाइनों से जब पूरा घर-आँगन गली-मोहल्ला और कस्बा-शहर जगमगाता है। यह छोटा-सा दीया छोटी-सी बाती, छोटी-सी लौ से घर-द्वार में किसी खास जगह पर बिना हुड़दंग मचाए उत्सव को सार्थकता देता रहता है। विकास की दौड़ में तथा आधुनिकता के दुराग्रह के बाद भी आदमी ने इसका साथ नहीं छोड़ा।

बात यह है कि 'बहुत अँधेरा है' का ढिंढोरा पीटने से अँधेरा भाग नहीं जाएगा। अँधेरे के खिलाफ नारों और भाषणों से भी पिछले पचास सालों में कुछ नहीं हुआ 'ईंट से ईंट बजा देने' वाले वक्तव्य मंच से नीचे उतरते ही अर्थ खोते रहे। हवा में लाठियाँ भाँजी जाती रहीं। बिना लक्ष्यों के मुट्ठियाँ तनती रहीं। जो मुद्दे विवाद के हो ही नहीं सकते, उन पर संघर्ष होता रहा और देश की ताकत चुकती रही। सारे संसार को प्रकाशमय करने की बातें होती रहीं और देश में अँधेरा घिरता रहा। बिजली लाने, मशाल जलाने के मंसूबे होते रहे, लेकिन ऐसा सबकुछ करने, सोचने वालों में से कोई खुद दीपक बनकर नहीं जला। अँधेरे को भगाने के लिए झाड़ू नहीं लगाई जाती। हल्ला नहीं मचाया जाता। चुपचाप एक दीपक जला दो, अँधेरा अपने आप भाग जाएगा। संघर्ष का आह्वान निदान नहीं है। संघर्ष करना मुख्य है। दीप की तरह। कुम्हार-दाजी की तरह। किसान की तरह। उस व्यक्ति की तरह जो धुर-जंगलों में अपनी आस्था के दीपक में संस्कृति के अध्यायों की रक्षा कर रहा है।

आधुनिकता के साथ चलते, वेश और केश को अंग्रेजियत देने, व्यवहार में खास दिखने और दीपावली के दिन पटाखों की फड़फड़ाहट के साथ पूरे घर को बिजली के जुगनुओं से झकास करने के बावजूद गरीब–अमीर, राजा-रंक, पढ़-अपढ़ सबके मन में मिट्टी का एक दीप जलाने की भावना स्थायी है। बिजली की रोशनी में पूरा घर नहा लेने के बाद भी जब तक गृहलक्ष्मी दीप का तिलक घर के माथे पर लगा नहीं देती, तब तक मन की साध और उत्सव की पूर्णता अर्थ नहीं पाती। बूटेदार चुनरी की ओट हो, चाहे थिमला लगे लुगड़े का आँचल हो, गृहलक्ष्मीं तुलसी चौरे, मिट्टी के ओटले और लक्ष्मीपूजन की जगह अँजुरी-भर आस के साथ दीपक जरूर बालती है। जीवन के भूत, वर्तमान और भविष्य को एकसूत्र में बाँध वह दीप की बाती चढ़ाती है और उसकी सोना-सरीखी लौ में उजाले के सपने देखती है। मन की सुई लक्ष्मी के स्वागत-गीत के रिकार्ड पर घूमने लगती है। दीप अपने उजाले में एक साध को आकार देने लगता है।

कुम्हार-दाजी और उसके पूरे परिवार के सपने आकार पाते-पाते ही शोषण की फुहारों में गल जाते हैं। समूचे देश के आधे से ज्यादा परिवारों के सपने ऐसे ही या तो तोड़ दिये जाते हैं या फिर उनकी खरीद-फरोख्त होने लगती है। इस देश की हर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
लिपी-पुती देहरी पर दीप जला है। लक्ष्मी की मनुहार की है। प्रतीक्षा में कई दीप जलते-जलते बुझ गए हैं। कई दीपक बूँद-बूँद तेल की कमी से रात का महोत्सव और उल्लुओं की चाल नहीं देख पाते। कुछेक ने इन दीपों के बल पर ही मरकरी और ट्यूब की रोशनी हासिल की है। जिनके दीपों का पेंदा तेल से गीला-भर था उन्हें बरगलाकर और रोशनी का लालच देकर रहे-सहे तेल की जुगत भी छीन ली और उन्हें हमेशा के लिए अँधेरे की अनजान खोहों में ढकेल दिया गया। कुछ ने आदमी-आदमी के बीच जलते दीपक को झपट लिया और दुर्गम खाइयाँ बना दीं। कुछ लक्ष्मी को तिजोरी के हवाले कर खर्राटे मार रहे हैं। उन्हें डर है कि कहीं गोदामों में दीप जल गया तो देश के हजारों लोगों के पेट के बुझे दीपक जल उठेंगे। कुछ इस फिराक में हैं कि दुकान के नौकर गंगाराम के भीतर कोई साक्षरता का दीपक न जला दे, नहीं तो बही-खातों के अँधरे अक्षरों के अर्थ नीलाम हो जाएँगे।

दीपावली के दीप से वह उजेला तब होगा, जब सात बरस का मनसुक्खा होटल में देर रात तक कप-बसी धोने के बजाय, बगल में बस्ता टाँगकर किसी पब्लिक स्कूल में पढ़ने जाएगा। संभव है आएगी ऐसी दीवाली कभी और जीवन की पूर्णता की लौ नाचेगी माटी के दीप पर।

❑

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गुलाब की पंखुड़ियों से

वसंत के हरकारे आ गए हैं। आम की डाल बौर-गुच्छों से निहाल हो उठी है। कचनार के पत्तों की आड़ में से फूल आँखें खोलने लगे हैं। फागुन की राह तकता टेसू फगुनौटी को आता देख चौकस हो गया है। रंगों की भाषा उसकी डाल-डाल, छोर-छोर पर शब्द बैठाने लगी है। सेमल की उमंग की तो बात मत करो। सारे पत्ते फेंककर सुर्ख लाल फूलों की झंडियाँ लेकर फागुन की अगवानी में खड़ा है। एक खास किस्म की हवा घर-घर जाकर उछाह के रंगों से लिखे पर्चे बाँट रही है। दफ्तर जाते हुए लोग सड़क किनारे पलाश-सेमल को खिलखिलाता देख होली के आने का संकेत भाँपने लगे हैं। रंगों के डोरे आँखों में उभरने लगे हैं। यादें पिचकारी की धार बन मन को अच्छे लगनेवाले व्यक्ति के आसपास गहराने लगी हैं। उधर खेतों में सरसों, अलसी, गेहूँ के दानों और किसान की छोरी में दूधिया रस प्रगाढ़ होने लगा है। हवा के साथ फसलों की झूम और मौसम के साथ पाँवों की थिरक में एक सरीखी रिद्म पैदा हो गई है। फागुन का नाम सुनते ही माँ के बूढ़े चेहरे पर हँसी आँखों तक फैल जाती है। कुल-वधू का मन संतरे की फाँक हो जाता है और गुलाब की पंखुड़ियों से रस अनायास झर जाता है-

एकै संग धाए नंदलाल औ गुलाल दोऊ,
दृगन गए जु फिर आनंद मढ़ै नहीं।

कवि पद्माकर की पंक्ति के अर्थ में गोता लगाने से बहुत गहरे में दो चीजें हाथ लगती हैं—एक बावरी उम्र और दूसरा किसी का हो जाने से प्राप्त होनेवाला आनंद। ये दोनों चीजें इस देश की अस्मिता के उन चौराहों पर खड़ी हैं, जहाँ से निरंतर नयी राहों की तलाश शुरू होती है। उम्र के हर पड़ाव का प्रत्येक क्षण कैलेंडर में छपी तारीख होता है। बीता और गया, लेकिन जीवन के अनुभव उसमें दाखिल होते रहते हैं। कैलेंडर के पन्ने फट जाते हैं। नये वर्ष के साथ दिन-तिथि बदलते जाते हैं, लेकिन जीवन कहीं बहुत खूबसूरती से कुछ क्षणों और दिनों को अपनी डायरी के पन्ने बना लेता है। संघर्ष अधमरा हो जाता है। विकट अणात और बुढ़भस चालबाजी के बीच

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खड़े रूखे और मरियल चेहरे मुट्ठी-भर हँसी आकाश की झोली में डाल देते हैं। आदमी खुद अपने से टूटता है। इस टूटन का खास सुख होता है। दूसरों से जुड़ता है। याने उत्सव मनाते-मनाते स्वयं उत्सव बन जाता है। उत्सव नया रचता है। भविष्य सिरजता है।

टेकरी पर उगी झाड़ियाँ और खड़े पेड़ों को कोई पानी नहीं देता। उनका कोई माली नहीं होता, फिर भी वे वसंत के जलसे में अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं। क्यारियों के गुलाब और जंगल के पलाश को वसंत मौसम के बहाने जोड़ रहा है। राजकुमारी कभी बेसन रोटी नहीं खाती होगी और झोपड़पट्टी के गंगाराम को कभी दूध-जलेबी का स्वाद नसीब नहीं होता होगा, पर दोनों के भीतर होली पूरी मस्ती के साथ दनदनाती चली आती है। सारे फासले मिट जाते हैं। सारे भेद-अर्थ खो चुके होते हैं। एक जमीन बनती है, जिस पर रंगों की नदियाँ बहती हैं। आदमी पूरा पेड़ हो जाता है। हँसी के फूल झरते हैं। उमंग की सुगंध को हवा दिशा-दिशा में ले भागती है।

होली आई। राजा थोड़ा नीचे उतरा। जनता थोड़ी ऊपर बढ़ी। दोनों एक दरी पर बैठे। फाग सुनी। रंग में भींजे। मन का मलाल बह गया। पड़ी गाँठ छूट गई। आदमी के भीतर पहाड़ी झरना फूट पड़ा। झरना सूखी जमीन को सींच रहा है। मिट्टी के अणु-अणु में बँट रहा है। धरती के गर्भ में रस बन रहा है। आज गाँव का श्यामा मोची सरपंच पर गुलाल फेंकेगा। कर्ज में गले-गले डूबे मजूर की पत्नी सेठान्नी के ऊपर रंग की न सही तो पानी की पूरी बाल्टी उड़ेल देगी। आज कोई काम पर नहीं जाएगा। घेरे और तासें पर पड़ती थापें, मूँछों पर नाचते स्वरों के साथ मिलकर गली-गली में व्यक्ति की स्वतंत्रता और उत्सवप्रियता का ऐलान करेगी। दफ्तर का चपरासी अबीर-गुलाल के बहाने ही सही, आज साहब के घर जाकर संकोच-सहित बढ़िया मिठाई खाएगा और बदले में थोड़ी-सी संवेदना साहब की चौखट पर रख देगा। खास बात यह कि साल-भर आतंकित करनेवाले तथा बड़ा साफ-सुथरा दीखने वाले साहब के शरीर को छुएगा। कैसे होते हैं साहब, जो तरह-तरह के मँहगे साबुनों से नहाकर शरीर को इतना अच्छा रखते हैं! वह साहब के घर की गंध और उनकी थोड़ी मुस्कुराहट को खींसे में रखकर पूरे दिन अपने टोले में सबसे ज्यादा होली खेलेगा। कल माँ जब बर्तन माँजकर देर रात लौटी तब ही बड़े मुन्ने ने शराबी पिता तक खबर भेज दी थी कि वह होटल नहीं जाएगा। आज उसके हाथों में ऐरों-गैरों के झूठे कप-प्लेट नहीं होंगे, रंगों की पुड़िया होगी। हथेलियाँ लाल होंगी। हथेलियों के रंग से वह अपने खून के रंग का मिजान बिठाने की कोशिश करेगा। आज उसकी आँखों में सेठ की डपट से उपजी सहम नहीं होगी। आँखें एकदम खाली होंगी, किसी को उसमें बसाने की अनजान चहक अनायास जन्मेगी और वह घूम आएगा गली के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आखरी मकान तक। तब ऊँची भाषा में कही गई बातों के अर्थ रंग, अबीर और हँसी के जरिए अपने आप समझ में आने लगते हैं, कि क्यों और कैसे नंदलाल और गुलाल दोनों एक साथ आँखों में आ धमकते हैं।

कितने-कितने भावों से मिलकर यह होली का रसभीना माहौल बनता है। त्यौहारों की अवधारणाओं में मनुष्यों के एकीकरण तथा मन की निर्मलता की बात निहित है। त्यौहार मन के मैले फर्श पर पोंछा लगाते हैं। आदमी को उसकी बिरादरी में बार-बार लौटाते हैं। अपने खून की परख हासिल कराते हैं। वसंत के पर्व पतझड़ में पेड़ पुराने पत्ते सहजता से छोड़ते हैं। पुराना छूटता है, नये की तलाश होती है। एक क्रम नियति बनकर प्रकृति के माध्यम से जीवन की धमनियों में घुलता है। जहाँ किशोर और किशोरी एक-दूसरे के रंग में डूब–डूब जाते हैं, तब लगता है होली आदमी के रंग का पर्व है। सारे भौतिक रंग बदरंग हो जाते हैं। आदमी का रंग दूसरे पर चढ़ जाता है। और एक स्तर पर, एक ठौर पर दोनों अलग-अलग खड़े दीखते हुए भी एक हो जाते हैं। तब राधा और कृष्ण इतिहास नहीं होते, मिथक बन जाते हैं। यह मिथक प्रकृति और पुरुष के जरिए हर उम्र को किशोर-किशोरी अवस्था में तब्दील कर देता है। कुछ नया पाने, नया बनने और नया जीने का संकल्प उभरने लगता है। मन की पिचकारी से रंग की धार जाति, समाज, धर्म की सरहदों के पार फैलती जाती है। कूड़ा-करकट सब डूब जाता है। मनुष्य के सोच और मन की महीनता का फैलाव वहाँ तक पहुँचता है जहाँ यह देश सिर्फ मानव बनकर खड़ा है और करोड़ों लोगों से जुड़ती हुई स्मृतियाँ विश्वकवि रवींद्र बाबू की पंक्तियाँ गुनगुनाने लगती हैं :

हे मोर चित्त, पुण्य तीर्थे जागो रे धीरे,
एई भारतेर महामानवेर सागर-तीरे,
केहो नाहि जाने, कार आह्वाने, कत मानुषेर धारा,
दुर्वार स्रोते एलो कोथा हते, समुद्रे हलो हारा।

"ओ मेरे हृदय इस महामानवता के पारावार तीर्थ में श्रद्धा से आँखें खोलो। किसी को पता नहीं कि किसके आह्वान पर मनुष्यता की कितनी धाराएँ प्रबल वेग से बहती हुई कहाँ-कहाँ से आईं और इस महासमुद्र में मिलकर सो गईं।" कवि ने पूरे राष्ट्र को अपने भीतर खोजा था। उसके उल्लास का स्वर अपने खून में महसूस किया था। इसीलिए कहता हूँ कि एक बिंदु पर यह देश और इस देश का आदमी कहीं पर्याय हो जाते हैं। इस देश पर कभी भी एकीकरण थोपा नहीं गया। एकीकरण का काम इसमें रहनेवाले हजारों-हजार आदमियों की अनुभूतियों ने किया है। पर्वों और त्यौहारों से जुडे संस्कारों ने किया। ये संस्कार पानी सरीखे होते हैं, जो स्वयं होली

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का रंग मिलाकर लोगों के चेहरों पर लाली और आँखों में हवा के जागरण के डोरे उकेरते रहे हैं। ठेठ नीचे समुद्र किनारे खड़े होकर नजरों को हिमालय तक फैलाएँ तो लगता है कि किसी ईमानदार बिंदु पर सारे आवरणों के बावजूद इस देश का हर व्यक्ति एक है। पूरा देश होली की ट्रेन में सवार होकर घूम रहा है—प्रांत-प्रांत, दिशा-दिशा। वह होली के रंग और खून के रिश्तों की भी पड़ताल करता है और नतीजे में घोषित करता है कि जब-जब इसके भाल पर गुलाल और गालों पर रंग चढ़ा है, इसके खून की ललाई और अधिक गाढ़ी होती रही है।

बारीक पकड़ की जाए तो संपूर्ण भारतीय मनीषा का मार्ग सौंदर्य का रहा है। इसी के द्वारा वह सत्य तक पहुँचती है और वहाँ तक वह खुद शिवत्व से लबरेज हो जाता है। एक तरफ ऋषि-मुनि ने प्रकृति के सौंदर्य में जीते हुए मानव-जीवन और इस जगत का सत्य खोजा है। दूसरी तरफ इस देश के धुर गाँव में बैठे ठेठ किसान ने भूमि का मर्म और प्रकृति की वेदना की छुवन से संवेदना लेकर संघर्ष में राह खोजी है। वह अपने तजुर्बे में बहुत संपन्न है। वह बाहर से चाहे सीधा और दरिद्र हो, लेकिन मौसम के ज्ञान तथा मूल्यों के स्तर पर उसके कद की कोई बराबरी नहीं। सहजता में पहाड़ी झरने सरीखा है और मेहनत के विस्तार में फूल की प्रतीति में सुगंध जैसा। होली के माहौल में भींगना और भारतीय खॉटी किसान से मिलना एक सरीखा है। क्षण के आनंद की प्रतीति में दोनों व्यक्ति को स्वयं से मुक्त करते हैं। दोनों जीवन के दर्शन को फट से निकालकर हथेली पर रख देते हैं। दार्शनिक सोचता रहता है और निहायत सामान्य जन दिनभर होली खेलकर रात में सपनों को समझता है कि सुबह की दुनिया में चलने के लिए पैर चाहिए और पेट तथा हाथों के रिश्ते सौतेले नहीं होते।

निचाट, रात में पुल पर से रेल गुजरती है। नींद उचट जाती है। टिहरी गढ़वाल, उत्तर काशी, भुज तथा अंजार के मकानों के मलवों में बच्चों के टूटे खिलौने दबे हैं। उनमें पिचकारियाँ भी हैं। गंगा की धार तेज हो गई है। नर्मदा की धार में पड़े पत्थर घिस-घिसकर आदमी की शक्ल पाने लगे हैं। उठकर खिड़की के शीशे को पोंछता हूँ। बाहर सबकुछ जाग उठा है। सूरज कई-कई पिचकारियों के साथ पहाड़ पर खड़ा है। पुराने कपड़ों में नये बच्चे सड़क पर आ गए हैं। उनकी आँखों में रंग हैं और हाथ खाली हैं।

❑

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

टेसू के नवल छंद

आम और कचनार ने कानाफूसी की। चुप्पे से उनकी बात हवा ने सुन ली। दरख़्तों की शाखों पर चढ़-चढ़ कर हवा ने बोम लगाना शुरू कर दिया कि आम के पास वसंत की चिट्ठी आई है। वह आ रहा है। निगोड़ा वसंत आ रहा है। ठगोरा वसंत आ रहा है। रसराज वसंत आ रहा है। ऋतुराज वसंत आ रहा है। धरती का श्रृंगार आ रहा है। दिशाओं का साज आ रहा है। नायिकाओं का मान आ रहा है। परिंदों का गान आ रहा है। खुशियों की बारात आ रही है। उम्मीदों की सौगात आ रही है। पतझड़ की हरारत आ रही है। छोरा-छोरी की शरारत आ रही है। फागुन की रौनक आ रही है। चैत की खनक आ रही है। फूलों की बहार आ रही है। वनदेवी की डोली लिए कहार आ रहा है। वह सेमल के लिए पेरावणी ला रहा है। वो देखो—टेसू को साथ लिए आ रहा है। वसंत के पास कित्ते सारे गहने हैं! पलाश ने तो कुछ नहीं पहने हैं। वसंत के साथियों की क्या शान है! पर बापड़ा टेसू क्यों इतना परेशान है?

मैं जब टेसू को परेशान देखता हूँ, तो गोदान के 'होरी', खंजन नैन के 'सूरदास', मैला आँचल के 'बाबनदास' यह पथबंधु था के 'श्रीधर' और मेरे गाँव के 'मंगत्या' की याद आती है। मंगत्या जो बारह मास दूसरों के यहाँ धाड़की करके वार-त्यौहार बमुश्किल खुशियाँ जुटाता है। मंगत्या जो पुराने मालगुजार का खेत बटाई से जोतता है। दिनभर टक-टक रस्ता देखने के बाद रात के नौ बजे कुएँ पर बिजली आती है। पंप का हरा बटन दबाता है। जाड़ों की सर्द रातों में उम्मीदों के गेहूँ को पानी देता है। हाथ सुन्न होते जाते हैं। ज्यों-ज्यों रात गलती है, चेहरे पर बर्फ की तहें चढ़ती जाती हैं। इतने में सभा-समाप्ति के बाद देर रात कारों, जीपों का काफिला गुजरता है। उड़ी हुई गर्द गेहूँ के पीकों पर जम जाती है। बल्ब का उजाला कुछ अजीब हो जाता है। मंगत्या जोर से अपने चेहरे की बर्फ खिराता है और सुबह सूरज से आँख मिलाते-मिलाते एक-एक कतरा झाड़ देता है। वसंत आते-आते वह खरीफ और रबी की फसल को अँकवार में भरकर तौलता है। सुख-दुःख का जमा-नामे करता है। और बची हुई सुगंध को होली के गुलाल के साथ मिलाकर गोरी के गाल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पर मल देता है। यह मौसम उसके पास कभी-कभार ही आता है। पलाश भी बरस में एक ही बार फूलता है। उसका यह खिलना होरी, श्रीधर, बाबनदास या मंगत्या के चेहरे पर चिपकी हुई हँसी ही है।

गाँव का सीधा ताल्लुक प्रकृति से है। दरख़्तों के पत्तों-पत्तों पर आद मी के जन्म से लेकर आज तक इंसानी हरकतों और उसकी दिली ख्वाहिशों की इबारत लिखी हुई है। खासकर पलाश तो ग्रामीण जीवन के हर मोड़ पर भरोसेमंद सदस्य बनकर खड़ा हुआ है। किसी की पोच का पता लगाना हो तो उसकी जड़ों की गहराई, बुनावट और उपयोगिता पर गौर करना होगा। आदमी के जीवन से उसका रिश्ता तलाशना होगा। पलाश अपनी जड़ों में सबसे ज्यादा जीवंत, पानीदार और दानी होता है। वह गाँव के 'दुबल्या' और 'ठनठनपाल' की टापरी से लेकर 'धनपतलाल भंडारी' के मकान तक की यात्रा द्वारा गाँव और शहर को जोड़ता है। जड़ें हमेशा जोड़ती हैं। जीवन को हरियाला बनाती हैं। इसके आसपास की मिट्टी सरकाकर जड़ काटकर बाहर निकाल ली जाती है। 'ठनठनपाल' के घर की बल्लियाँ और बाँस-बनाटी पलाश की जड़ों के रेशों से बँधी हैं। गरीब की छप्पर पर यह संबंधों की गाँठ बनता है। जिसके नीचे गरीबी पलती है। धड़कनें जतपत चलती हैं, लेकिन आत्मीयता सब जगह पसरी रहती है। धनपतलाल भंडारी के मकान में ले जाने से पहले टेसू की जड़ों का मुँह दोचा जाता है। उसके मुँह को चूने में और तरह-तरह के रंगों में डोबकर दीवारों पर रगड़ा जाता है। बारीक रेशे बनकर जड़ शहर में आकर खतम हो जाती है। बची हुई जड़ों में टेसू फिर ऊर्जा जुटाता है। अपने हरेपन में कहीं टोटा नहीं आने देता और मौसम में एक मुट्ठी फूल तो आसमान की छाती पर फेंक ही देता है।

अवधी का एक लोकगीत है जो ढाक के भीतर की मुलायम जमीन से रूबरू कराता है। अवधी में इस गरीब पेड़ का नाम छिउला है। एक हरिण-हरिणी का जोड़ा है। हरिणी छिउला के झाड़ की छाया में उदास खड़ी है। चरते-चरते हरिण पूछता है—हरिणी क्या तुम्हारा चरागाह सूख गया है? या प्यास के मारे तुम्हारा चेहरा मुरझा गया है? हरिणी कहती है—ऐसा कुछ नहीं है। आज राम की छठी है और मुझे इस बात का खटका है कि तुम मार डाले जाओगे। हरिण हिम्मत देता है—अरी पगली, राम की छठी के वास्ते यदि मारा गया तो उद्धार हो जाएगा। इतने में बहेलिया आते हैं। हरिणी चिल्लाती है—भागो, अपने प्राण बचाओ। राजा के बहेलियों के आगे अरदास करती है—मुझे मारकर ले जाओ। मेरे हरिण को छोड़ दो। शिकारी गुर्राते हैं—हरिणी का मांस सुमांस नहीं होता। हरिण को ही मारेंगे। हरिणी पीछे फिरकर देखती है। जरा-सी देर में हरिण खेत हो जाता है। मरे हुए हरिण को लाते हुए शिकारियों के पीछे-पीछे हरिणी राज अटारी तक आती है। सामने मचिया पर रानी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
कौशल्या बैठी है। उससे हरिणी गिड़गिड़ाती है—रानी, मेरे हरिण का मांस तो पकाना। मुझे मेरे हरिण की खाल दे दो। खाल को पेड़ से टाँगूँगी और मन को समझाऊँगी कि मेरा हरिण जिंदा है। कौशल्या साफ नट जाती है। कहती है—तू पागल हुई, मैं हरिण की खाल से खँजरी मढ़ाऊँगी। उससे मेरा राम खेलेगा। कायल हरिणी अपना–सा मुँह लेकर उसी पलाश के नीचे लौट आती है। लोकगीतकार करुणा को शब्द देता हुआ कहता है—जब-जब खंजरी बजती है, तब-तब आवाज सुनकर हरिणी कान उटेरकर खड़ी हो जाती है। टेसू की घनी छाया के नीचे हरिण की याद करती है। रह-रहकर बिसूरती है :

जब-जब बाजे खँजड़िया सबद सुनि अनकै हो।
हरिनी ठाढ़ि ढकुलिया के तरवा हरिन का बिसूरै हो।

गीत की करुणा मानस की बहुत बड़ी जमीन को गहरे भींजती है। पूरी घटना के बीच से करुणा की जो बनक उभरी है, वह संवेदना के असली मर्म को खोजती है। हरिणी के साथ पलाश भी झुर रहा है। जब खंजरी की आवाज सुनाई देती है, हरिणी का एक-एक क्षण दुश्वार होता जाता है। याद तेज़ होती जाती है। दुःख गाढ़ा होता जाता है। हरिणी की आँखों से टप-टप आँसू टपक जाते हैं। और ठीक उसी समय अपत पलाश की फुनगी पर से लाल-लाल फूल हरिणी के आँसुओं के साथ करुणा बनकर झड़ पड़ते हैं। यहाँ साहित्य की भूमि पर स्थित करुणा और लोकगीत की करुणा में खास किस्म का अंतर है। इंदुमती के वियोग में अज रोया। प्रकृति उस दुःख में शरीक होते हुए भी एक तरह से तटस्थ रही। कण्व ने शकुंतला को विदा दी। पूरी प्रकृति बेटी की विदाई के दुःख में भींग गई। लेकिन विकट दुःख होने के बाद भी बेटी को रोकने की अंदरूनी इच्छा किसी की नहीं होती। मेघदूत में यक्ष और साकेत में उर्मिला के सामने समय की शिला थी। अवधि तय थी। प्रकृति ने वहाँ सहलाने के बजाय उद्दीप्त ज्यादा किया। कनुप्रिया की प्रकृति राधा और कृष्ण, ससीम और असीम के इतिहास की गवाह है। वह खड़ी है और साक्ष्य दे रही है लेकिन लोकगीतकार हरिणी को संयोग, आशंका और संकट की हर घड़ी में पलाश के नीचे खड़ी करता है। इसकी क्या वजह है?

इसकी वजह है। हरिणी वनैले पशुओं में बहुत ही गऊ किसम की होती है। अपने ऊपर किए गए दुश्मन के वार का सामना करने के बजाय वह उससे बचाव करती है। टेसू का पेड़ भी निरीह होता है। तने, डालियाँ और आकृति बहुत उम्दा नहीं होतीं। सूखने के बाद भी भड़भड़ जलकर एक तरफ हो जाता है। इस लोकगीत में हरिणी और पलाश दोनों की ही रूढ़ छवि टूटी है। हरिणी दुःख की पोटली बाँधकर जंगल में नहीं जाती, बल्कि पलाश की छाया में खड़ी-खड़ी महल की निर्ममता और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

व्यवस्था को चुनौती देती निर्भीक बनती है। उसके समर्थन में टेसू भी पत्ते खिराता है। फूलों में ताकतवर बनता है। बहुत ही भोले किसम का जीव और पेड़ मिलकर बेकुसूर हरिण की हत्या का विरोध करते हैं। यहाँ गीत अपनी करुणा में से गलत के खिलाफ आवाज़ लगाता है।

आपने कभी उस आदमी को देखा है—काम कर-करके जिसकी पिंडलियों की नसें गाँठें बनकर उभर आई हों। या उसे, जिसका चेहरा चेचक ने चुग लिया है और सिर्फ एक आँख दुनिया के उजाले को बटोरने में लगी है। बस, ठीक इसी तरह टेसू का तना होता है—खुरदुरा, गाँठों भरा, दोदड़ाया हुआ और कहीं-कहीं पोला भंड। सूखी धरती और गर्मीले मौसम से यह जीवन का रस चुराकर रख लेता है। बेमौसम, अकारण तेज बहनेवाली हवा से दो-दो बातें भी करता है। और ठाठ के साथ सारे पेड़-पौधों के बीच अपनी साफ-पहचान बना लेता है। मंगत्या, दुबल्या और ठनठनपाल की तरह यह मेरे देश में उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम तक कमोबेश मौजूद है। इसलिए कि गरीब के पैदा होने का कोई मौसम और खास जगह नहीं होती। किसी भी जगह की पानी-मिट्टी ही इसमें चेतना बनकर दौड़ती हैं और फूलों में गंध बनकर हवा में फैल जाती हैं। यह पेड़ का और आदमी का धरती को दिया जानेवाला प्रतिदान है। चुकाया जानेवाला कर्ज है। यह उसकी बड़ी खूबी है कि किसी जमीन को वह अपनी बना लेता है या वह उस जमीन का हो जाता है। यह टेसू-सरीखा आदमी या आदमी-सरीखा टेसू ही कर सकता है।

इतने सारे वनमहोत्सव तथा वृक्षारोपण कार्यक्रम होते हैं, मैंने कहीं पलाश का पौधा उगाते–रोपते नहीं देखा। जो आसानी से सब कहीं उग आए, पनप जाए, परवरिश हो जाए उसे क्या अबेर-अबेर कर उगाना-रोपना। मेरे ख्याल से जो सहज प्रतिभा है, उसे रोपा नहीं जाता, रोपा नहीं जा सकता। किंसुक बाग का बिरवा नहीं है। वह तो स्वतः अंकुरित होता है। ऊबड़-खाबड़, दग्गड़-पत्थर, हल्की-भारी कैसी भी जमीन पर धमोड़ा फोड़कर निकल आता है। जब धरती-आकाश के बीच सूरज आपातकाल लागू किए रहता है। जर्रे-जर्रे पर उसकी किरणें कड़ा फरमान लिखती रहती हैं। उसकी गर्मी की आतस से मुरदार पेड़-पौधे कुड़मुड़ हो जाते हैं। नदी-तालाब सूख कर लंपट उड़ जाते हैं। जमीन आँच से गरमगट्ट होकर बेचैनी महसूस करने लगती है, तब पलाश उसकी कोख में करवट बदलता है। अपने जन्म की पूर्वसूचना देता है और पतली छरहरी देह लेकर धरती पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा देता है। इतनी भीषण गर्मी और इतना मुलायम रूप। रसभरी डंडी और पान सरीखे पत्ते। कोई निर्दंभ, द्वंद्व से परे और बेवजह के आतंक से वेपरवाह ही ऐसा हो सकता है। यह दूसरे पेड़-पौधों के तौर-तरीकों से नहीं जीता। उसे समूह की खुशी नहीं और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
अकेलेपन का गम नहीं। इसकी अपनी मस्ती है। अपनी रौनक है। अपना तजुर्बा है। पलाश के इस रूप को देखकर कवि धूमिल की चेतावनी याद आती है :

> अकेला कवि कठघरा होता है / साथ ही मुझे डर है कि 'वह' आदमी तुम्हें सिलसिले से काटकर / अलग कर देने पर तुला है / जो आदमी के भेस में/ शातिर दरिंदा है / जो हाथों और पैरों से पंगु हो चुका है मग़र नाखून में जिंदा है।

होता भी यह है कि टेसू को जमीन की सतह के बराबर से काटकर उस पर मिटट्टी फेर दी जाती है, लेकिन वह अपनी जड़ों में हरा होता है। तब वह अकेली डंडी और दो-चार पत्तों के साथ ऊपर आता है और बैसाख-जेठ की बेहूदी गर्मी को अपनी कूवत से वाकिफ कराता है। समझाइश देता है कि अब तो नरम हो जाओ, तपना बंद करो। रोहिणी चली गई। मृगशिरा लग गई। आषाढ़ आनेवाला है। इसके साथ ही वह अपनी काबिलियत और हरयाली की भाषा में आदमी होने की तमीज सिखाता है। एक दिन होता यह है कि जो सही है उसकी भाषा सारा जंगल, पूरा गाँव और समूचा शहर बोलने लगता है।

किंसुक के नवोदित पल्लवों में गज़ब का हरापन और मुलायमपन होता है। जेठ-बैसाख जब भरपूर तपते हैं, यह और ज्यादा रसदार बनता है। पत्ते-पत्ते पर गाढ़ी हरियाली सिमटती आती है। इसके नये-नये हरे रेशम सरीखे पत्तों को हाथ लगाने से बच्चे के गालों को छूने का सुख मिलता है। बच्चा, माता-पिता के साथ ही परिवार और समाज को जोड़ता है। पलाश के पत्ते भी जुड़ते हैं। बाँस की सींक खोंस कर पत्तल-दोने बनाये जाते हैं। नरम और हरे कच्च पत्तों के बने पत्तल-दोनों में घास-फूस से छाये मंडवे के नीचे या गाँव के बाहर अमराई में पंगत जीमना बड़ा सुखकर लगता है। पत्ता-पत्ता जुड़कर आदमी के सामने परात बन जाता है, जिस पर व्यक्ति सामाजिकता को परोसता है और खानेवाला संबंधों के तीखे-मीठे स्वाद को महसूस करता है। पत्तों को जोड़नेवाली बाँस की सींक बहुत अहमियत रखती है। बाँस का भीड़ा अपने आपमें एक वंश का प्रतीक है। बाँस अपनी जड़ों में सघन, इच्छा में जीवट और पेर-पेर में ऊचाई वाला होता है। वह ऐसे कुटुम्ब समान है, जो रिश्तों में सघन, व्यवहार में जीवित तथा चरित्र में बेजोड़ है। ऐसे वंश की पीढ़ियाँ ही समाज के हर वर्ग को, हर व्यक्ति को पलाश के पत्तों की तरह जोड़ती हैं जिस पर समूची मानवता सुख-शांति के पकवान रखकर खाती है। जीती है। सुख अनुभव करती है। पलाश जुड़ता है। फिर पंगत के रूप में व्यक्ति-व्यक्ति को जोड़ता है। जो कुत्ते-कुत्तियाँ गंगा जी नहीं जा पाते और घूड़े के चक्कर लगाते रहते हैं, वे जूठी पत्तल चाटकर अपना यहाँ रहना सार्थक करते हैं। कुत्ते की जबान को तलवों की धूल और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
पत्तल की जूठन का स्वाद बहुत अच्छा लगता है। 'ढाक के तीन पात' वाली कहावत कुत्तों की न बदलनेवाली दशा और आदत की ओर ही इशारा है।

मेरे गाँव के बाहर तपसी बाबा का स्थान है। बैसाख सुदी पूर्णिमा को पूरा गाँव कंडों के जगरे लगाता है। दाल-बाटी-चूरमा बनाता है। गाँव में कोई घर चूल्हा नहीं जलता। सब वहीं रोटी बनाते हैं। खाते हैं। यह परंपरा है। मुझे याद है—जब तक जगरा सिलगता और आटा मसा जाता, हम ढेर सारी पलाश की पत्तों भरी टहनियाँ तोड़ लाते। एक-दूसरे को मारते। पलाश पर चढ़ते-उतरते। टहनियाँ और पत्तों से जगह साफ करते। उन्हें बिछाकर बैठ जाते। पत्तल बनाते। दोना बनाते। पिताजी और जीजी टेसू के थोड़े कड़क पत्ते तोड़कर लाते और बाटी को ज्यादा चपटी कर दो पत्तों के बीच में रखकर पत्तों सहित अंगारे पर सेंकने रख देते। निमाड़ में इसे 'पानग्या' कहते हैं। पान से पत्ता और अग्या से आग का आशय है। पत्तों के जरिये जिस रोटी को आग पर सेंका जाए वह 'पानग्या'। पानग्या सिंकते रहते। सिंकते हुए पत्तों का रस बाटियों में आ जाता। दाल और शुद्ध घी के साथ प्रकृति के सुराँधेपन का जब कौर लिया जाता, तब प्रकृति और आदमी के संबंधों की जातीय कहानी बोल उठती। प्रकृति के साथ आदमी की पुरानी हिस्सेदारी जीवित हो उठती।

अंग्रेजी में जिसका बड़ा लंबा-चौड़ा और अटपटा नाम है—'बूटिया मोनो स्पर्मा' उसे बुंदेलखंड में 'छेवला' कहकर जाना जाता है। पूरा निमाड़ और मालवा इसे बहुत ही खुरदरे संबोधन 'खाकरा' से बुलाते हैं। खाकरा भी भला कोई नाम हुआ। रूप और शरीर की उटपटाँग गढ़न की वजह से ही बरखुरदार को यह नाम दिया होगा। इसके मिजाज में कबीर की मस्ती है। अंदाज में फक्कड़पन है और जिंदगी के तौर-तजुर्बे में फाका-मस्ती भी है। यह पत्ते उतारना शुरू करता है, तो बेभान हो जाता है। पूरी तरह नंगा। सर से पैर तक दिगंबर होकर निखट्टू की तरह खड़ा हो जाता है। 'खाक' के माने हैं राख अर्थात कुछ नहीं। याने झड़ना शुरू किया तो बेरोक झड़े और एक भी पत्ता अपने खाते में नहीं रखा। फिर रूंड-शुंड खड़े आकाश को ताक रहे हैं। इसके इसी अवघड़पन को देखकर लोक ने 'खाकरा' कह कर पुकारा।

इसके खिलने पर और खिलने के जिक्र से साहित्य के पन्ने अटे पड़े हैं। बिना खाकरा के फूलों और इसके खड़खड़ाकर फूलने के रुख की चर्चा के बिना वसंत की चिट्ठी लिखी ही नहीं जाती है। इतना तय है कि अपने पर चर्चा करवाने के लिए यह इश्तहार नहीं चिपकाता। इसके खुद-ब-खुद फूटे श्रृंगार पर लोक रीझे हैं। इतने कुरूप झाड़ में से कर्म के इतने खुबसूरत फूल निकलते देख जगत चकित और आकर्षित हुआ है। मतलब यह है कि वह अपनी चर्चा करवाता नहीं, उसकी चर्चा होती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
यह जाहिर भी है कि वसंत के आने का असर वनस्पति के निचले तबकों में किस तरह होता है—इसकी सर्वोत्तम अभिव्यक्ति टेसू के लटालूम खिलने में होती है। सवाल यह है कि खिलकर क्या होता है—जंगल के जंगल लाल हो जाते हैं। पूरी धरती दुल्हन सरीखी सज जाती है। टहनियों पर जैसे संतरा की फाँकें लटकने लगती हैं। धरती का यौवन-रस इसमें गदरा कर आकाश में मिलने के लिए हुमस उठता है। प्रकृति पककर मानो फूलों के माध्यम से पुरुष का आराधन करती है। इसके फूलों के बने रंग से सगरा फागुन फाग खेलता है।

म.प्र. के मंडला जिले में मंडला-बमनी रोड पर केहरपुर गाँव के पास और मानोठ के पास दो सफेद पलाश के झाड़ हैं जो मौसम आने पर सफेद झक्क फूलों से लक-दक होकर अपनी विमलता का सबूत पेश करते हैं। सबके फूल लाल और इनके सफेद। बस, ठवनी देखते ही बनती है। यह सब तो है ही। मैं कहता हूँ इसके अतिरिक्त 'खाकरा' के खिलने का खास मकसद है। पलाश के फूल खिलते हैं तो राष्ट्रीय उद्यान बारातियों सरीखे सज जाते हैं। सारे जनपदों के आसपास और जनपथों के किनारे यह सुंदरता की शीतल नज़र बनकर बिछ जाता है।

छत्तीसगढ़ के खेतों की मेड़ों पर तुर्रेदार पगड़ी बाँधे सिपहसार खड़े हो जाते हैं। गंगा-यमुना के कछार में लोक-संस्कृति की सूखती धारा को किसी तरह फूलों की अँजुरी में अबेर कर छिउला बचा लेना चाहता है। निमाड़, मालवा, विंध्य-सतपुड़ा, रेवा-ताप्ती की ज़मीन से लेकर दक्षिण के पठार तक 'खाकरा' आदमी के भीतर ज़िंदा इच्छा की तरह संघर्षों में खिलता रहता है। पूरे भारतवर्ष में यह आनेवाली गर्मी के खिलाफ व्यक्ति की मुक्ति और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का पक्ष प्रबल करता है। यह पूरा झड़कर खंखाड़ हो जाता है। फिर पूरे दमखम के साथ खिलता है। इस क्रिया के पीछे क्षणवादी दर्शन नहीं है बल्कि बहुत आगे तक का समयानुकूल सोच है। झड़ता है तो पूरी पुराने-सुराने को उतार फेंकता है। खिलता है तो बस खिलता है। सिर्फ खिलता है। कुछ काम नहीं। कोई दूसरी हरकत नहीं। उसके बाद मिटने के बजाय फिर से जन्म लेने की हिकमत सोचता है। मौसम की गरम छाती पर बीज गाड़ देता है। बरसात की बिना परवाह किए सूखे मौसम और ताती ज़मीन पर पूरी ताकत के साथ हरियाली बनकर फूट पड़ता है। कोयल एक बार फिर कूकती है—मैंने वसंत को फूलों से हटकर नये रूप में देखा है। क्या आपमें से भी किसी ने देखा है?

❑

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शुक्र तारे से श्रृंगारित साँझ

लोक की दृष्टि बहुत व्यापक होती है। उसके पास यह दृष्टि विगत के अनेक अनुभवों से आती है। ये अनुभव सीधे प्रकृति और जीवन से संबंधित होते हैं। जीवन की परिधि भी इस संपूर्ण सृष्टि की जैविकता से आशय रखती है। प्रकृति में धरती-आकाश के बीच के सारे रूपायन आ जाते हैं। कभी-कभी चेतना इनका उल्लंघन कर झिलमिलाते तारों के पार चली जाती है। तब लगता है चेतना का संस्कार हो चुका है। पर वास्तविकता यह है कि चेतना तो अपने-आपमें न संस्कारमय है और न संस्कारहीन। वह तो निरपेक्ष है। सापेक्ष की तरह हमें महसूस होता है। चेतना जब बुद्ध बन जाती है; तब वह जरा-मरण, संसार-तृष्णा का संसार पार कर चुकी होती है। लोक भी अपनी चेतना में कभी-कभी इतना सहज, किंतु इतना विराट हो जाता है कि ऊपर से लगता है वह काँदों-कीच में धँसा है, पर पास जाकर मन की आँखों से देखने पर भान होता है कि एक खूबसूरत कमल, जल से ऊपर उठकर संसार को सौंदर्य से श्रृंगारित कर रहा है।

निमाड़ी बोली का अपरिमित सौंदर्य, भाव-प्रवणता और नेह-छोह से भरा श्रृंगार गीत है :

शुक्र को तारो रे ईश्वर ऊँगी रह्यो
तेकी मखऽ बिन्दी घड़ावऽ।
ध्रुव की वादळई रे ईश्वर तुली रह्यी
तेकी मखऽ तहबोळ रँगावऽ।
सरग की बिजळई रे ईश्वर कड़की रह्यी
तेकी मखऽ मगजी लगावऽ।
नवलख तारा रे ईश्वर चमकी रह्या
तेकी मखऽ काचळई सिलावऽ।
चाँद-सूरज रे ईश्वर ऊँगी रह्या
तेकी मखऽ टीकी लगावऽ।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वासुकी नाग रे ईश्वर देखई रह्यो
तेकी मखऽ एणी गुथावऽ।
बड़ी हठ वाळई,-रे गोरल-गोरड़ी।।

यह गणगौर पर्व में गाया जानेवाला गीत है। रनुबाई अपने पति ईश्वर से कहती है कि आकाश में वह जो सबसे तेज शुक्र का तारा चमक रहा है, उसकी मुझे बिंदी गढ़वा दो। ध्रुव की ओर (उत्तर दिशा में) जो बदली बरसने के लिए उठकर झुक आई है, उसकी मुझे चुनर रँगवा दो। यह जो स्वर्ग में बिजली कड़क रही है, उसकी मेरे घाघरे में मगजी लगवा दो। ये जो नौ लाख तारे चमक रहे हैं, उसकी मुझे कुंचुकी सिलवा दो। चाँद और सूरज की टीकी लगवा दो। हे पतिदेव। यह जो वासुकी नाग दिखाई दे रहा है; इसकी मुझे चोटी गुथवा दो। यह सुनकर पतिदेव ईश्वर राजा मुस्कुराते हुए रनुबाई से कहते हैं कि हे गौरवर्ण वाली गोरी, तू बड़ी हठीली है।

इस गीत में कई अनुगूँजें सुनाई दंती हैं। बहुविध संदर्भ और महीन कल्पना, लोक के पास ही हो सकती है। लोक की ज़मीनी अनुभवशीलता ही उसकी वास्तविक समृद्धि है। मनुष्य के विकास की प्रक्रिया में उसका चौपाये से दो पाया बनना अभूतपूर्व उपलब्धि थी। मनुष्य की रीढ़ की हड्डी का सीधा होना प्रकृति में घटित विस्मय, जिज्ञासा और आशा से परिपूर्ण घटना थी। चेतना की यह मृत्यु से अमरता की ओर होनेवाली प्रक्रिया थी। वाणी का प्रस्फुटन भी उसी विकास-क्रम का स्वर्णिम सोपान है। वाणी के द्वारा कमाल यह हुआ कि मनुष्य ने अपने आसपास को नाम दिए। वरना कितनी-कितनी चीजें उसके संसार में थीं, पर सब अनाम थीं। मनुष्य ने धरती, नदियों, पर्वतों, बर्फ-मंडित ध्रुवांतों, मेघों, बिजलियों, नक्षत्रों को जीवित-बोध की तरह पाया और इन्हें जीवन के उत्कर्ष-अपकर्ष में गाया भी।

सबसे पहली बात तो यह कि इस गीत का दांपत्य-जीवन प्रेम-पगा है। लगता है पति-पत्नी के भीतर शांत-शीतल-स्वच्छ जल की बावड़ी भरी है, जिसकी सीढ़ियों पर बैठकर दोनों जीवन को गा रहे हैं। यदि प्रेम की यह निर्मलता-शीतलता न होती, तो मान-मनुहार और इच्छा-अभिलाषा की लताएँ फूलों से लदकर बावड़ी के ऊपर नहीं झुक आतीं। प्रेम संयोग और वियोग दोनों ही स्थितियों में मनुष्य की जागृति की खिड़कियाँ खोलता है। पर वियोग की खिड़की से तीखी धूप आती है, जो उसकी चेतना और शरीर-तंतुओं को एक साथ सक्रिय करती है। यह गीत मन की प्रेमिल भूमि पर पाँव-पाँव चलता हुआ संयोग की अमराइयों में पहुँचता है; जहाँ दो तन एक मन हो जाते हैं। जहाँ प्रिया, प्रिय में अपना संरक्षण, अधिकार और सुखमय संसार देखती हैं। प्रिय की आँखों में ओस से भीगीं पीले कनेरों वाली सुबह देखती है। मन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का पंछी उड़ान भरने लगता है। उसे अपने आसपास का जितना भी संसार दिखाई देता है, वह सब तक पहुँचना चाहता है। या उस संसार को शृंगार की तरह पहन लेना चाहता है। इच्छाएँ बोल उठती हैं। गीत फूट पड़ता है।

दूसरी महत्वपूर्ण बात है कि यहाँ निसर्ग के साथ खड़ा मनुष्य निसर्ग की चीजों से ही स्वयं को शृंगारित करना चाहता है। पत्नी, पति से किसी हाट-बाजार, जयपुर-मुंबई से चीजें खरीदकर लाने को नहीं कहती। और न ही वह आभूषण की चाह रखती है। उसकी चाहना इनसे बड़ी है। उसकी चाहत में पदार्थ-जगत की सीमाएँ लुप्त हो जाती हैं। वह प्राकृतिक उपादानों से स्वयं को विभूषित करना चाहती है। कह सकते हैं कि इस गीत का मनुष्य एकदम प्रकृति सरीखा निर्मल और चोखा है। उसके भीतर भौतिकता को अंधी कामना नहीं जन्मी है। वह इस अखिल प्रकृति का एक अंश है और प्रकृति के परिवार का सदस्य भी। अतः वह अपना पहनावा तथा उस पहनावे की सुंदरता बढ़ानेवाले उपमान भी प्रकृति से ही जुटाने की अभिलाषा करता है। यह औद्योगिक सभ्यता को दिया गया उलाहना तो है ही; इससे भी अलग बात यह ध्वनित होती है कि प्रकृति के इन उपकरणों से बढ़कर दुनिया की किसी भी फैक्ट्री में ढली कोई भी वस्तु अधिक सुंदर नहीं होती।

तीसरी खास बात यह कि लोक के पास प्राकृतिक उपादानों के गुण-धर्म की गहरी समझ होती है। शुक्र का तारा वर्ष में कुछ माहों में शाम के समय सबसे पहले चिलकता दिखाई देता है और कुछ माह में भुनसारे से उगता दिखाई देता है। यह तारों में चमकनेवाला सबसे तेज प्रकाशवाला तारा है। शुक्र के तारे की वह स्त्री बिंदी गढ़वाने को कहती है। बिंदी तारे की आकृति वाला छोटा चमकदार सोने का आभूषण होता है, जिसके पिछले भाग में नाड़ा बँधा रहता है, जो केशों में खुसा रहता है, तथा वह बिंदी केशों तथा ललाट की संधि रेखा पर माँग में लटकती रहती है। स्त्री के भाल पर दमकती बिंदी और शुक्र के तारे की चमक का साम्य दृष्टव्य है। पातिव्रत धर्म में परिपूर्ण नारी के ललाट की बिंदी उसके सतीत्व की प्रतीक होती है। उसके तेज के सामने कुप्रवृत्तियाँ हार जाती हैं। शुक्र तारा, राक्षसों के गुरु शुक्राचार्य का प्रतीक माना जाता है। शुक्राचार्य की एक आँख है। इसलिए फूटी आँख का तेज भी साबुत आँख में आ गया। एक आँख में दोनों की शक्ति समा गई। अतः शुक्र तारे की रोशनी सबसे ज्यादा, सबसे अलग है। एक अभिव्यंजना और हो सकती है कि राक्षसी वृत्ति वाले व्यक्ति के गुरु सरीखे व्यक्तित्व के तेज को अपनी बिंदी में समाहित कर उसे आभूषण की तरह वह पहनना चाहती है। वह कुप्रवृत्ति में से भी उसकी ज्ञानात्मक रचनात्मकता को ललित रूप में ललाट पर धारण करना चाहती है। यह लोक के सोच का उदात्त स्वरूप है। प्रकृति के सुंदर-चमकदार तारे को बिंदी के रूप में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
लगाकर वह अपने व्यक्तित्व को भी अकाशीय विस्तार देती है।

ध्रुव की (उत्तर दिशा की) बदली घिर आई है, उस बदली के रंग में डुबोकर मेरी चुनरी रँगवा दो। इस आसान-सी लगनेवाली पंक्ति में मनोभावों का अद्‌भुत उमड़ाव है। ध्रुव दिशा से उठकर घिरनेवाली बदली का बरसना निश्चित होता है। ऐसी मान्यता और अनुभव-प्रमाणित बात दोनों ही हैं कि ध्रुव दिशा की ओर से बादल उठा है, तो बरसेगा जरूर। बादल के बरसने से फसल लहलहाएगी। फसल पकेगी, घर में समृद्धि आएगी। समृद्धि आएगी तो चूनर आएगी। अभिलाषाएँ चूनर को ओढ़कर बादल, फसल, समृद्धि और जीवन के विविध बिंबों को खुशियों के दर्पणों में देखती हैं। प्रिया के आग्रह का कुछ और भी अर्थ है। 'तहबोळ' का निमाड़ी शाब्दिक अर्थ है 'तह तक डुबोना'। तहबोळ याने किसी बर्तन, जलाशय, पोखर की तह तक डूबकर कपड़े को निकालना। 'कपड़े बोळ देना' याने कपड़े डुबो देना। यहाँ 'तहबोळ' का दूसरा अर्थ बदली के आकार की छोटी चूनर भी है। ध्रुव की बदली तुली हुई हैं। अर्थात उत्तर दिशा में घटा घिर आई है, उस बदली के रंग में मेरी चुनरिया को गहरे डुबोकर रँगवा दो। मानो बदली साँवल रंग से भरा हुआ भगोना हो, उसमें वह स्त्री अपनी चूनर डुबोकर रँगवाना चाहती है। गीत के अंत में संकेत है कि वह गोरी गौरवर्ण की है, अपने गोरे शरीर पर वह साँवले रंग की साड़ी पहनना चाहती है। उसकी पसंद के रंग प्रकृति के पास हैं। उसकी पसंद प्रकृति से प्रकृतितः जुड़ी है, फिर भी इन अभिलाषाओं में उसकी कल्पना एक चुनौती को आमंत्रण देती है।

झक से बदली में बिजली चमकती है। लोक की वाणी में चमक भर जाती है। प्रिया कहती है, इस बिजली की मेरी कंचुकी में मगजी लगवा दो। मगजी दो चीजों में लगाई जाती है–एक कंचुकी में ओर दूसरी घाघरे में। कंचुकी को काचळई कहा जाता है। काचळई बड़े ही कलात्मक ढंग से सिली जाती थी। चट स्त्री की छाती को पूर्णतः ढँकी रखती थी। इसमें चार कसे (नाड़ा के फुंदे) लगे रहते थे, जो पीठ पर जाकर बँधते थे। इस तरह स्त्री की छाती एकदम कसी रहती थी। यह काचळई जिस रंग के कपड़े की बनी होती थी, उससे अलग रंग के (कंट्रास्ट) कपड़े की मगजी लगाई जाती थी। मगजी किसी नये कपड़े की चिंदी होती है, जिसे कंचुकी या घाघरे की किनार पर लगाया जाता है। जैसे कि ओढ़नी में गोट लगाई जाती है। चूंकि बिजली का रंग सफेद-पीला होता है, इस कारण वह स्त्री अपनी कंचुकी में उसकी मगजी लगवाने का आग्रह करती है। काचळई में जगह-जगह काँच के टुकड़े लगाकर (सिलाई में फाँद कर) उसे सुंदर और आकर्षक बनाया जाता था। प्रिया उन काँच के टुकड़ों के बजाय उसमें नव लाख तारे जड़वाना चाहती है। उसकी झिलमिलाती हुई

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

कंचुकी की शोभा स्त्रीरूपी प्रकृति के सौंदर्य का हिस्सा बन जाती है।
Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उदित होते सूरज-चाँद का वह अपने मस्तक पर टीका लगाना चाहती है। यह टीका सुहाग का प्रतीक तो होता ही है, उसके सतीत्व का तेज़ भी अपने में सन्निहित किए रहता है। स्त्री का सतीत्व अपनी रक्षा में सूरज-सा प्रचंड होता है। उसका नारीत्व अपने ममत्व में चाँद-सा शीतल होता है। यहाँ तक तो सारी बातें आकाश से जुड़ी हुई हैं। गीत के अंत में और गजब हो गया है। वह पाताल में बसे और अपने फन पर पृथ्वी को धारे हुए वासुकी नाग को देखती है और पति से आग्राह करती है कि इस वासुकी नाग की मुझे चोटी गुथवा दो। वासुकी नाग का रंग और लंबाई दोनों का सुंदर-सा दृश्य यहाँ बन पड़ा है। केश काले हों, और लंबे हों तथा चोटी कमर से नीचे तक आ जाए, तो वह सौंदर्य में चार-चाँद लगा देती है। विशेष बात यह कि यह नारी धरती पर खड़ी है, लेकिन अपने कामना-हाथों से आकाश-पाताल दोनों को जोड़ रही है। वासुकी नाग काल का भी प्रतीक है। भय का भी सूचक है। लेकिन नारी ने उसे चोटी में गूँथना चाहा है। वह उसे पीठ पर लादकर निर्भय होना चाहती है। यह निडरता खुशी के अतिरेक और मन की निर्द्वंद्व स्थिति में ही आती है।

गोरल गोरी के हठ में बहुत विराट भाव-भूमि काम कर रही है। वास्तव में ये पति-पत्नी इस ब्रह्मांड में क्रियाशील प्रकृति और पुरुष की उच्चभूमि की स्थिति तक जानेवाला संकेत हैं। गीत की नारी, केवल स्त्री न होकर अपने सुकोमल भावों के भराव और फैलाव में प्रकृति बन जाती है। वह प्रकृति ही आकाश-पाताल स्थित अनेक तत्वों और रंगों से स्वयं का श्रृंगार करना चाहती है। लोक की यह प्रकृति अपने हठ में और अपने समर्पण में प्रकृति जैसी निर्मल ही होती है। उसे देखने के लिए मन की आँखें खोलनी पड़ती हैं और उसकी उत्सवता में शामिल होने के लिए सिर का बोझ उतारकर फेंक देना होता है।

❑

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चित्रकूट से आम्रकूट

मध्यप्रदेश तुलसी अकादेमी के तत्वावधान में एक पुण्यमयी यात्रा आयोजित हुई। वह संवत् 2058 का पुरुषोत्तम मास है। दो आश्विन हैं। दो दिन पूर्व ही अधिक मास की प्रथम अमावस्या गई है। यह अमावस्या सोमवती है। अधिक मास की तृतीया को यात्रा आरंभ हुई। इस दिन 20 सितंबर 2001 गुरुवार है। यात्रा रोमांचक भी है। और शोधपूर्ण भी है। जिस मार्ग से भगवान राम वन को गए हैं, उसी मार्ग को खोजना है। अयोध्या से चित्रकूट तक की शोध-यात्राएँ पूर्व में आयोजित हो चुकी हैं। उनके आधार पर अयोध्या से चित्रकूट तक का पथ सुनिश्चित हो चुका है। यह यात्रा चित्रकूट से आम्रकूट तक की है। यह यात्रा तीसरे चरण की है। इस शोध दल में पाँच सदस्य हैं–प्रो. अवधेश प्रसाद पांडे (भोपाल), डॉ. रामसुंदर दुबे (सागर), डॉ.श्रीराम परिहार (खंडवा), डॉ. सियाराम शरण शर्मा (झाँसी), और डॉ. वेद कुमार शर्मा (चित्रकूट)। प्रो. अवधेश प्रसाद पांडे तुलसी अकादेमी के सचिव हैं, वे ही दल का नेतृत्व कर रहे हैं।

मैं रोमिल स्फुरण से आप्लावित हूँ। जिस राह से राम, लक्ष्मण, जानकी नंगे पाँव गए हैं, उस पथ को खोजते हुए हमें जाना है। उस राह की धूल का स्पर्श ही जन्म-जन्मांतर के पाश काटने को काफी है। जिस वृक्ष की छाँह में राम बिरमे हैं, उस तरुवर की छाँह पाते ही जीवन की सारी दग्धता शमित हो जाती है। जिस नदी-झरने के जल का स्पर्श कर राम पार हुए हैं, उसका जल पीकर जीवन को सरस बनाने का उपक्रम किया जा सकता है। उन नदी-नद-निर्झरों की कलकल में अभी राम-सीता-लक्ष्मण के स्वर सुने जा सकते हैं। वन के सुक-सारिका कीर-कोकिल, मोर-चातक की वाणी में राम-सीता-लक्ष्मण के संवाद गुने जा सकते हैं। वे लताएँ, तरुवर, गुल्म, तृण सब अभी तक राम के नेह से हरे हैं। वे शिलाएँ अभी तक राम की उदारता और कारुण्य का पता बता रही हैं। वे कंदराएँ, वे एकांत, वे गिरिशिखर, वे अभयारण्य अभी तक अपने आँगन में राम-सीता-लक्ष्मण के अमिट चिह्न सहेजे हुए हैं। मुनियों के आश्रमों की शीतलता कह रही है कि राम यहाँ बैठे थे, राम यहाँ रुके थे, राम यहाँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

मुनियों के चरणों में झुके थे। वही मर्यादा और राम के स्वभाव का गांभीर्य चिंतन की ऊँचाइयों को अभी तक नाप रहा है।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह यात्रा आस्थापूर्ण तो है ही, उससे भी महत्वपूर्ण यह तथ्यपूर्ण है। हमारी यात्रा चित्रकूट से आरंभ हुई। यह यात्रा एक तरह से कामदगिरि की परिक्रमा के साथ आरंभ हुई। कामदगिरि जो स्वयं भगवान का आश्रम-स्थल बना। राम और भरत के मिलन से उपजी नेहाग्नि से जिसके पत्थर भी पिघल गए। जो अभी तक राम-भरत के चरण अपने हृदय में धारण किए हुए हैं। वहाँ से हमारी यात्रा प्रमोद वन होती हुई गुप्त गोदावरी के मार्ग से सतना की ओर आरंभ हुई। अर्थात चित्रकूट से हम दक्षिण दिशा की ओर बढ़े। ऐसा इसलिए कि वाल्मीकि रामायण में अरण्य कांड में शरभंग मुनि राम से कहते हैं—"श्रीराम इस वन में थोड़ी ही दूर पर महातेजस्वी धर्मात्मा सुतीक्ष्ण मुनि निवास करते हैं। वे ही आपके लिए स्थान आदि का प्रबंन्ध करेंगे। आप फूल के समान छोटी-छोटी डोंगियों से पार होने योग्य अथवा पुष्पमयी नौका को बहाने वाली इस मंदाकिनी नदी के स्रोत के विपरीत दिशा में इसी के किनारे-किनारे चले जाइए। इससे वहाँ पहुँच जाइएगा।"

इमां मंदाकिनीं राम प्रतिस्रोतामनुव्रज।
नदीं पुष्पोडुपवहाँ ततस्तत्र गमिष्यसि।।

मंदाकिनी चित्रकूट की पहाड़ियों से निकलकर दक्षिण से उत्तर की ओर बहती हुई यमुना में मिल जाती है। मंदाकिनी का स्रोत दक्षिण से उत्तर है। शरभंग मुनि के बताए मार्ग के अनुसार राम मंदाकिनी के स्रोत के विपरीत दिशा में अर्थात उत्तर से दक्षिण की ओर जाते हैं। शरभंग मुनि का आश्रम मंदाकिनी के तट पर है और सुतीक्ष्ण मुनि का आश्रम वहाँ से थोड़ी दूर पर सारंग पर्वत के पास है। यह स्थान पन्ना जिले के लक्ष्मीपुर से 20-25 किलोमीटर की दूरी पर है। अतः चित्रकूट से हम दक्षिण की ओर सघन वन प्रांतर में से बढ़ते हैं। वर्षा का मौसम समाप्त हो चुका है। लेकिन उसकी अनुपस्थिति में भी उपस्थिति का भान वनश्री करा रही है। आम के बगीचे में कुआर के घाम से विकल होकर छाँह सुस्ता रही है। धान के लहलहाते खेत जीवन की आशाओं में बालियों के माध्यम से दूधिया रंग भर रहे हैं। बहती नदियाँ मन की तरंगों से खेलती हुई त्रेता का आह्वान कर रही हैं। मार्ग में पांडेजी से हरि-चर्चा करते हुए ग्राम पिंडरा, मझगवाँ और कोठी होते हुए दोपहर को सतना पहुँचते हैं। सतना से हमारा दल ग्राम जसौ पहुँचा। वहाँ के कर्नल साहब से भेंट की। कर्नल साहब को हमारे दल के आने की सूचना पहले से थी। अतः वे वाल्मीकि रामायण में मार्ग खोज रहे थे। छोटे-से ग्राम जसौ में उन्होंने अपने घर में सुंदर बगीचा लगा रखा है। वे इस क्षेत्र के राजा भी हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सड़क मार्ग होते हुए भी सड़क सरीखी कोई रचना वहाँ नहीं है। एक प्रकार से धूल-स्नान करते हुए हम लगभग तीन बजे जसो पहुँचे। वहाँ राजा साहब याने कर्नल साहब से चर्चा करने पर उन्होंने बताया—राम वन गमन के बारे में जनश्रुति है कि यहाँ से पास में ही अगस्त्य मुनि का आश्रम है, जो वर्तमान में सिद्धनाथ के नाम से प्रसिद्ध हैं। पूरे विंध्य में पहाड़ और नदियाँ हैं। राम अगस्त्य मुनि के भाई के आश्रम में रुके थे। कर्नल साहब के घर ही उसी गाँव की उच्चतर माध्यमिक शाला के प्राचार्य गोविंद प्रताप सिंह ने बताया कि सुतीक्ष्ण आश्रम देवेंद्रनगर से 10-15 किलोमीटर की दूरी पर है। वहाँ एक पर्वत है, जिसका नाम सारंग है। कर्नल साहब के यहाँ ही अब्दुल रहीम खान नामक एक साधारण से व्यक्ति से मुलाकात हुई। हमारे आने की खबर उसे भी थी। अतः वह भी वाल्मीकि रामायण के आधार पर पथ का अनुमान लगा रहा था। अब्दुल रहीम खान कहते हैं—"सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम के पास तीन कुंड हैं—राम कुंड, सीता कुंड और लक्ष्मण कुंड। वहाँ 64 मंदिर हैं। यह आश्रम जंगल में है। वहाँ से राम अगस्त्य के भाई अग्निजिह्वा के आश्रम में गए। अग्निजिह्वा का आश्रम नचना ग्राम ही होना चाहिए। वहाँ से अगस्त्य आश्रम में आए, जो सिद्धनाथ के नाम से जाना जाता है। वहाँ एक विशाल तालाब है। तालाब पहाड़ पर है।"

वाल्मीकि रामायण में उल्लेख है कि शरभंग मुनि के बताए अनुसार राम दक्षिण की ओर गए। वे दूर तक का मार्ग तय करके अगाध जल से भरी हुई अनेक नदियों को पार करते हुए आगे गए। तब उन्हें महान मेरुगिरि के समान एक अत्यंत ऊँचा पर्वत दिखाई दिया, जो बड़ा ही निर्मल था। यह पर्वत सारंग ही हो सकता है तथा भांडेर की पहाड़ियाँ (विंध्य की शृंखला) हो सकती हैं। शरभंग और सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम के बीच ही राक्षसों द्वारा ऋषियों को मारकर खाए जाने के बाद ऋषियों की हड्डियों का लगा हुआ ढेर राम को दिखाई देता है। जिसे देखकर अश्रुपूरित नेत्रों से राम भुज उठाकर राक्षसों को समाप्त करने का प्रण करते हैं। चित्रकूट की पहाड़ियाँ समाप्त हो जाने के बाद लंबा रास्ता तय करके सुतीक्ष्ण आश्रम में पहुँचते हैं। यह रास्ता एक घनघोर वनप्रांत से होकर जाता है। उसी वन में सुतीक्ष्ण मुनि का आश्रम है। वर्तमान में यह भाग पूरा मैदानी है तथा खेतों से भरा हुआ है। सुतीक्ष्ण मुनि से राम अगस्त्य ऋषि के आश्रम का पता पूछते हैं। तब सुतीक्ष्ण मुनि कहते हैं—"श्रीराम! महामुनि अगस्त्य जहाँ रहते हैं, उस आश्रम का पता मैं अभी आपको बताए देता हूँ। तात! इस आश्रम से चार योजन दक्षिण में चले जाइए। वहाँ आपको अगस्त्य के भाई का बहुत बड़ा एवं सुंदर आश्रम मिलेगा। वहाँ की वनभूमि प्रायः समतल है तथा पिप्पली का वन उस आश्रम की शोभा बढ़ाता है।"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस कथन को तथा ग्राम जसो के लोगों के कथन को आधार बनाकर हमारा दल ग्राम जसो से दुरैहागंज होते हुए नचना पहुँचा। नचना गाँव पन्ना जिले में है। यह कोल जाति के वनवासियों का गाँव है। नचना ही अगस्त्य मुनि के भाई अग्निजिह्वा का आश्रम प्रतीत होता है। क्योंकि सुतीक्ष्ण आश्रम से लेकर नचना तक की भूमि समतल है। राम वन गमन के समय यहाँ सुंदर वन रहा होगा। वर्तमान में सुंदर खेत हैं। अभी भी नदियाँ हैं। तालाब हैं। नचना ग्राम राजापहाड़ी की तलहटी में बसा है। ग्राम के पास एक विशाल तालाब है। पहाड़ी को श्रेयांस पहाड़ी कहते हैं। वर्तमान में इस पहाड़ी पर जैन मंदिर हैं। लेकिन पहाड़ी की तलहटी में बने तालाब के किनारे बहुत पुराना शिव मंदिर है। मंदिर में अद्‌भुत और दुर्लभ शिव प्रतिमा है। यह चौमुखी शिव प्रतिमा है। शिव की एक मुद्रा दूल्हे की, दूसरी विषपायी की, तीसरी योगी की और चौथी अर्धनारीश्वर की है। विशाल शिवलिंग पर ही ये चारों प्रतिमाएँ भिन्न-भिन्न मुद्रा में हैं। काले-रेतीले पत्थर पर उकेरी ये प्रतिमाएँ मूर्तिकला की बेजोड़ रचना है। ऐसी प्रतिमा अन्यत्र कहीं देखने में नहीं आई। इस मंदिर की दीवारों पर दोनों तरफ विष्णु और लक्ष्मी की प्रतिमाएँ हैं, जो यह संकेत देती हैं कि यह स्थल वैष्णव और शैव दोनों मतावलंबियों का रहा होगा। सामने प्रतिमाहीन देवी मंदिर है। यहाँ अभी भी अनेक पीपल के वृक्ष हैं। अतः यह अग्निजिह्वा का आश्रम ही है।

सुतीक्ष्ण श्रीराम को अगस्त्य मुनि के आश्रम का पता बताते हुए कहते हैं कि "यहाँ से (सुतीक्ष्ण आश्रम से) चार योजन दक्षिण में अगस्त्य के भाई का आश्रम है और वहाँ से एक योजन पर दक्षिण में अगस्त्य मुनि का आश्रम है।" इससे यह बात पुष्ट होती है कि वर्तमान सिद्धनाथ आश्रम ही अगस्त्य मुनि का आश्रम रहा होगा, जो नचना ग्राम अग्निजिह्वा मुनि के आश्रम से एक योजन की दूरी पर ठहरता है। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि अगस्त्य जब उत्तर से दक्षिण को गए तब विंध्याचल को उन्होंने गुरुभक्ति में सदैव नतमस्तक रहने की बात कही थी। अतः उनकी उत्तर से दक्षिण यात्रा के पूर्व अगस्त्य का आश्रम यहाँ विंध्याचल में रहा होगा तथा दक्षिण की ओर जाने पर उनका आश्रम भद्राचल पर्वत के पास बस्तर-आंध्रप्रदेश सीमा पर बन गया। या यह भी हो सकता है कि उनके आश्रम की अलग-अलग शाखाएँ भी रही हों। अगस्त्य मुनि के आश्रम (सिद्धनाथ) के पास से ही विंध्याचल की पूर्व से पश्चिम तक फैली दीवार सरीखी पहाड़ियाँ हैं, जिनके किनारे-किनारे राम पूर्व-दक्षिण दिशा की ओर गए। संभवतः वे अगस्त्य ऋषि के आश्रम से भरहुत होते हुए बांधवगढ़ के मनोरम वन प्रांत में चले गए।

नचना में अनेक तथ्यों का अध्ययन करते-करते साँझ ढल गई है। ढोर जंगल से घर आने लगे हैं। पक्षी बसेरों को लौट रहे हैं। तालाबों का जल शांत है। सूखे की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मार झेलते खेतों का चेहरा उदास है और उदास है आँगन में बैठी माई। वनवासियों के बच्चे कौतूहलभरी निगाहों से हमें देखते हैं। उनके धूल-धूसरित बदन पर सूरज अपनी अंतिम किरण से तिलक खींच जाता है और कहता है कि मैं सूर्यवंश का प्रतीक, उस सूर्यवंशी राम के सखाओं के तुम पुत्रों का अभिनंदन करता हूँ। सूरज पहाड़ की ओट में अपने उजेले का गट्ठर लेकर चला जाता है। आकाश की नीलिमा अपने महाशून्य में और निखर उठती है। देखते-देखते रजनी ने उसके आँगन को मोतियों से भर दिया। हम उसी मोती जड़ी छतरी की नीली रोशनी में सतना, उचेहरा होते हुए मैहर की तरफ बढ़ रहे हैं। उच्च शिखर पर माँ शारदा का मंदिर और मंदिर तक जानेवाला पथ जगमगाता दिखता है। अनायास हाथ जुड़ जाते हैं। हमारा वाहन मैहर के विश्रामगृह में खड़ा हो जाता है। रात वहीं बीतती है। दिनभर की स्मृतियाँ नींद में उछलती-कूदती हैं। दो पुरुष सिंह एवं साध्वी नारी वनखंडों में नंगे पाँव चले जा रहे हैं। मैं पुकार लगाता हूँ। पर वे मेरी पुकार की सीमा से परे हैं।

सुबह होती है वह 21 सितंबर, 2001 की ओस-नहाई सुबह है। यह मन की थाल में आस्था का दीपक जलानेवाली सुबह है। एक लौ लगी है शारदा देवी के दर्शन की। हम एक के बाद एक सीढ़ी चढ़ रहे हैं। माँ का नाम लेते हैं और अगले पड़ाव पर होते हैं। हमारे दल में 30 वर्ष के नौजवान से लेकर 75 वर्ष के वयोवृद्ध-ज्ञानवृद्ध हैं। पर सब चढ़ रहे है। कोई थकता नहीं। कोई रुकता नहीं। मत्था सब झुकाते हैं। माँ के दर्शन करते हैं। जयकारा बोलते हैं। प्रसाद लेते हैं। नीचे उतरते हैं। देखा कि डॉ.सियाराम शरण शर्मा गुम हैं। ढूँढ़ाई हुई। परेशान हुए। मन में कुशंकाएँ उभरीं। कुतर्क गहराए। और प्रो. पांडे का आदेश हुआ—"डॉ. सियाराम शरण शर्मा को किसी भी हालत में लाया जाए, अन्यथा आगे नहीं बढ़ेगें।" लगभग एक घंटे की खोजबीन के बाद उन्हें विश्रामगृह से बरामद किया। दर्शन करने के बाद जाने कब वे सपाटे से सीढ़ियाँ उतरकर सीधे विश्रामभवन पहुँच गए। उन्हें देख दुश्चिंता दूर हुई। प्राण उड़ते-उड़ते रुक गए। माँ को प्रणाम किया। कहाँ माँ—"हम तेरे पुत्र हैं। आपदाओं से बचाना। हम उस मार्ग पर जा रहे हैं, जिस पर कभी राम गए थे।" इस मिश्रवाक्य की व्यंजना पर मुझे हँसी भी आई। मन ने चपल हो कहा—'भले आदमी, तेरी क्या हैसियत कि जिस पथ से राम गए, उस पथ पर तू जा सके। राम का मार्ग कौन पा सका है?'

लौटकर विश्रामगृह आए। वहाँ हमारी भेंट मैहर के कुछ लोगों से हुई। उनमें से पं.रमापति गौतम नामक सज्जन ने कहा कि राम भरहुत से मनौरा, व्यौहारी के पास से दक्षिण-पूर्व में शहडोल की तरफ चले गए। राम ने नर्मदा को पार नहीं किया। वह अपनी देहाती तार्किकता से ठोस प्रमाण देते हुए कहता है—"नर्मदा कुँआरी है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राम एक पत्नीव्रत-धारी हैं। इसलिए राम ने नर्मदा का स्पर्श नहीं किया। उसे पार नहीं किया।" वह आगे कहता है कि "मैहर और उसके आसपास के क्षेत्र के लोग वहाँ से रामेश्वर जाते समय आज भी नर्मदा पार नहीं करते हैं। एक तो माँ नर्मदा कुँआरी है। दूसरे हमारे राम ने जब उसे पार नहीं किया, तब हम कैसे उसे लाँघ सकते हैं?" मैंने पूछा तब फिर वर्तमान में रामेश्वर कैसे जाते है? उसने कहा—"यहाँ से इलाहाबाद जाते हैं, वहाँ से कलकत्ता, फिर रामेश्वर। दूसरे रास्ता मैहर से कटनी, बिलासमुर, रायपुर होते हुए रामेश्वर जाने का है।" सुनते-सुनते मैं रोमांचित हो उठा। मेरे नेत्र सजल हो उठे। आस्था का ऐसा संयत-शांत निर्वाह कहाँ मिलेगा? मैं अमरकंटक से भड़ौच तक नर्मदांचल में भटका हूँ, पर मर्यादापुरुतोषत्तम राम से जुड़ा ऐसा नर्मदा-प्रसंग मुझे कहीं नहीं मिल सका।

राम के वन गमन का एक अनूठा रास्ता उसने और बताया कि चित्रकूट में गुप्त गोदावरी है। उस गोदावरी नदी का उद्‌गम तो चित्रकूट में है, लेकिन वह यहाँ प्रकट होकर गुप्त रूप से होती हुई दक्षिण (महाराष्ट्र, नासिक) में त्र्यंबकेश्वर के पास पहाड़ पर प्रकट हुई है। वन गमन के समय राम, सीता, लक्ष्मण इस गुप्त गोदावरी के मार्ग से ही चित्रकूट से नासिक (पंचवटी) पहुँचे हैं, ताकि उन्हें नर्मदा पार न करना पड़े। खैर! जनश्रुतियों, जनआस्थाओं, विश्वासों और किंवदंतियों से यह देश संस्कृति के टूटे तारों को जोड़ता रहा है। और अबूझ अँधेरों में राह तलाशता रहा है।

मैहर विश्रामगृह से 11 बजे चले। कटनी आ गए। कटनी के बाहर एक ढाबे पर दोपहर क़ा भोजन किया। यहाँ सड़क की एक तरफ मजार है, दूसरी तरफ राम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान और शिव के मंदिर हैं। वहाँ से सीहोरा होते हुए जबलपुर आए। सिहोरा से जबलपुर की सड़क बहूत अच्छी है। दोनों ओर आम के वृक्ष हैं। मेरा निरंतर वार्तालाप प्रो. अवधेश प्रसाद पांडे से चल रहा है। उन्हें अनेक प्रसंग मालूम हैं। उन्हें खूब पंक्तियाँ याद हैं। अनूठे संदर्भ उनके पास हैं। वे अपनी ओर से भी राम कथा को रोचक बनाने हेतु कुछ जोड़कर प्रस्तुत करते हैं। वे वाणी के धनी हैं। अतः निरंतर बोलते हैं। बिना रुके शायद आठ-दस घंटे बोलने की क्षमता रखते हैं। उन्हें सुनकर मुझे बड़ा आनंद आता है। मैं कुछ महत्वपूर्ण अपनी डायरी में लिखता चलता हूँ। कब जबलपुर आ गया, पता ही न चला। जबलपुर में 5 बजे ज्ञान गंगा पब्लिक स्कूल पहुँचे।

ज्ञान गंगा पब्लिक स्कूल के प्राचार्य डॉ. भगवान स्वरूप शर्मा म.प्र. तुलसी अकादेमी के पूर्व सचिव रह चुके हैं। डॉ. शर्मा भोला भंडारी हैं। इसके पूर्व पंद्रह नौकरियाँ छोड़ चुके हैं। यह सोलहवीं नौकरी है। अंडमान-निकोबार से लेकर संपूर्ण भारतवर्ष उनका कार्यक्षेत्र रहा है। उनसे मिलकर लगा जैसे भाई से मिल रहे हों।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बहुत सरल हृदय व्यक्ति हैं। शाम 5.30 बजे उनके साथ धुँआधार देखने नर्मदा-तट गए। धुँआधार यहाँ से 15 कि.मी. है। पश्चिम में सूर्यास्त हो रहा है। उसने हमारे मन को खींच लिया और साथियों ने उसकी फोटो खींच ली। पूर्व में, दक्षिण में नर्मदा की धवल धारा सौंदर्य से शिलाओं पर धरती का श्रृंगार कर रही है। वह अद्‌भुत नयनानंद है। हृदयानंद है। जल छुआ। आचमन किया। मस्तक झुकाया। 'नमामि देवी नर्मदे' कहा। शाम हो रही है। रात घिर रही है। धुँआधार से रात्रि 7 बजे चलते हैं। जबलमुर में विश्वविद्यालय अतिथिगृह में पहुँचते हैं। तब वहाँ विद्युत नहीं थी। रात्रि 8-15 पर विद्युत आती है। सबने जल को सिर चढ़ाकर धूल और थकान से मुक्ति पायी। पुनः नौ बजे स्कूल गए। भोजन किया। डॉ.शर्मा पब्लिक स्कूल का रात्रि में ही भ्रमण कराते हैं। अपनी रचना को उत्फुल्लता के साथ दिखाते हैं। हम उसके बाद रात्रि 11 बजे विश्वविद्यालय अतिथिगृह में आकर विश्राम करते है। मैहर से लेकर धुँआधार तक का पथ मेरी निंद्रा में साफ-साफ उभरता है, परंतु इस पथ पर मेरे राम मुझे दिखाई नहीं पड़ते हैं।

सुबह 22 सितंबर को साथ लेकर आती है। हम सब जाग गए हैं। वह जाबालि ऋषि के नगर जबलपुर की सुबह है। हरसिंगार के झरते फूलों वाली सुबह है। उन फूलों को सूरज-किरन आहिस्ता छूती है। उसके स्पर्श करते ही सारे सुमन धरती को ढँक देते हैं। मन प्रसन्न हो जाता है। अँधेरे के साथ ही थकान चेहरे से छू हो जाती है। हम फिर खोज के लिए तैयार हैं। सेनापति होशियार और सिपाही तैयार हैं। प्रातः 10 बजे हम गतिमान हो जाते हैं। जबलपुर से सिहोरा, कटनी, बड़वारा, छोटी पाली होते हुए हम उमरिया पहुँचते हैं। यह रास्ता विंध्य प्रदेश का है। यह अमरकंटक का उत्तरी भाग है। जिसमें छोटी पहाड़ियाँ हैं। नदियाँ हैं। नदी घाटियाँ हैं। नदियों में नीर है। घाटियों में वानस्पतिक संसार का बसेरा है। कुछ विचित्र किंतु बहुत सुंदर चिड़िया कहीं-कहीं दिख जाती है, तो मन भी वाहन से उतकर आकाशचारी हो जाता है। हम छोटी नदी पार करके आगे बढ़ते हैं। एक साधु साइकिल पर जा रहा है। हैंडल में चिमटा टँगा है। खड़िया कैरियर में दबा है। मैं कुछ देर के लिए हिमालय की कंदराओं से निकलकर दंडकारण्य की खोज में निकल पड़ता हूँ।

हम आगे बढ़ते हैं। आगे ही बढ़ते जा रहे हैं। आगे साथियों ने बताया कि ये जो दायीं ओर पेड़ खड़े हैं। वे मुचुकुंद के वृक्ष हैं। मैंने मुचुकुंद के वृक्षों को पहली बार देखा। इसके पहले डॉ. रमेश चंद्र शाह के कविता-संग्रह के नाम में यह शब्द पढ़ा था। वृंदावन बिहारी का यह नाम तो जग-जाहिर है। उन पेड़ों को देखकर मेरी आँखें कानों को छूने लगीं। हम बढ़ रहे हैं। धान के संपन्न खेत हैं, लेकिन प्यासे हैं। पानी की मनुहार धान के पत्ते-पत्ते से स्वरित हो रही है। उन खेतों में आदिवासियों को यत्र-तत्र

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देखकर वनवासी राम-सीता-लक्ष्मण की याद आती है। उमरिया पहुँचकर बायीं तरफ ताला के मार्ग पर मुड़ते हैं और 22 कि.मी की दूरी पर स्थित राष्ट्रीय अभयारण्य बाँधवगढ़ के मार्ग पर अग्रसर होते हैं। उमरिया से बाँधवगढ़ की ओर मुड़ते ही सरई, साल, तेंदू, बेल, बीजा, आँवला, बाँस, हरदोई, अचार, आम, महुआ आदि पेड़ों से मन अनायास जुड़ जाता है। मैं देखता हूँ कि एक पूरा वनप्रांत मेरे भीतर बसता जा रहा है। मन वन में है और वन मेरे मन में है। इतनी सघन, सुघड़, सुरम्य वनराजि मैंने बहुत दिनों बाद देखी।

मैं उस वनशोभा का क्या वर्णन करूँ? क्योंकि 'गिरा अनयन नयन बिनु वाणी।' अनेक जल-भरी नदियाँ हैं। सरोवर हैं। पेड़ों से लिपटी लताएँ हैं। और उस बाँधवगढ़ में पूरा त्रेता उतर आता है। गायें चराते वनवासी हैं। और अचानक हमारे वाहन के सामने से चौकड़ी भरते हरिणों का झुंड निकल जाता है। हमारी बाँछें खिल जाती हैं। बाँधवगढ़ के वन की हरीतिमा इतनी गाढ़ी है कि वह आँखों में धँस गई है। मन की ऋतु ही बदल गई है। बैरियर पर लिखा है–'अभायरण्य में हार्न न बजाएँ।' हम लगभग 4 बजे बाँधवगढ़ पहुँचते हैं। लोक निर्माण विभाग के विश्रामगृह में भोजन करते हैं। विश्रामगृह के पास ही बाँधवगढ़ गाँव है, जिसका एक नाम ताला भी है। भोजन करने के तुरंत बाद मैं गाँव में निकल जाता हूँ। दूर अकेले में बने एक घर की चौगान में एक बूढ़ा सूखी लकड़ी काट रहा है। मैंने उससे 'राम-राम' की। नाम पूछा। उसने बताया—बलबीर, उम्र 75 वर्ष, जाति—गोंड, व्यवसाय–किसानी। मैंने उससे कहा—"राम के बारे में कुछ बताएँ।" उसने कहा—"राम का नाम तो रोज लेते हैं। राम का न भजत तो केहि भजत?" पर वह राम के वन गमन मार्ग के बारे में कुछ न बता सका। बाँधवगढ़ में गोंड और वेगा जाति के लोग रहते हैं।

शाम के लगभग 7 बजे आसपास घूमने के उद्देश्य से अभयारण्य की ओर गये। अभयारण्य 1 अक्टूबर से खुलनेवाला है। अतः अंदर जाने को नहीं मिला। तब फिर एक रिसोर्ट में गए। रिसोर्ट के मालिक प्रो.अवधेश प्रसाद पांडे के परिचित हैं। उसके मालिक कैलाश गुप्ता ने पूरे रिसोर्ट में घुमाया। जंगल से प्राप्त वस्तुओं को कुछ आड़े-टेढ़े ढंग से रखकर उन्हें सौंदर्य की परिभाषा में रखा जा रहा है। यहाँ प्रत्येक वस्तु आड़ी-टेढ़ी है। उसी का सौंदर्य है। कैलाश गुप्ता कहते हैं—"इसी पर विदेशी रीझते हैं। टेंट में रहते हैं। भारी पैसा देकर जाते हैं।" हमें कुछ भी अजीब नहीं लग रहा है। भारत जिस प्राकृतिक खुले परिवेश में सदियों से रहने का आदी है, उसे ही पश्चिम अपना रहा है। जिस जीवन-विधि को हमने ग्रामीण और पिछड़ा घोषित कर दिया है; उसी जीवन-पद्धति को विदेशी जीना चाहते हैं। बाँधवगढ़ विश्व का सबसे सुंदर और खुला अभयारण्य है। यहाँ शेर, तेंदुआ, बाघ एवं अन्य प्राणियों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को सबसे निकट से देखा जा सकता है। गुप्ता बताते हैं—इधर आगरा वाले का होटल बन रहा है। उधर कलकत्ता वाले का, उधर मुंबई वाले का। और भी लोग आ रहे हैं यहाँ होटल खोलने। यहाँ होटल व्यवसाय की बड़ी संभावनाएँ हैं। पता नहीं क्यों मेरा मन यह सब देख-सुनकर बहुत उत्साहित नहीं है। होटलें खुलने से तो अभयारण्य की प्राकृतिकता खत्म होती जाएगी। अभयारण्य में होटलें और रिसोर्ट खुलने से महानगर की सारी गंदगी आ जाएगी। सरकार को चाहिए कि यह सब करने की अनुमति अभयारण्य से लगभग 20-25 कि.मी. दूर दे। बाँधवगढ़ में केवल प्रकृति और प्रकृति-पुत्रों को ही रहने की अनुमति मिलनी चाहिए।

रास्ते में पथ-संकेत से पता चला कि यहाँ कबीर चौरा भी है। कहा जाता है कि यहाँ बाँधवगढ़ में ऊपर किले में कबीर चौरा है। कबीरदास यहाँ आए थे। कबीरदास के शिष्य धरमदास बाँधवगढ़ के राजा के यहाँ रहते थे। धरमदास ने ही कबीर के साहित्य को देशभर में प्रसारित-प्रचारित करने का अनुपम कार्य किया। कबीर के साहित्य के प्रसार की गंगोत्री यहाँ से निकली है। वहाँ से लौटकर हम जंगली जानवरों को देखने की लालसा से अमरपाटन की ओर कुछ दूर जाते हैं, परंतु निराशा ही हाथ लगी। तब फिर लौटकर उमरिया की तरफ जाते हैं। हम दम साधे वाहन में बैठे हैं, हमारी आँखें अँधेरे को भेदकर किसी वन्य प्राणी को देख लेना चाहती हैं। बड़ी दूर जाकर हमारी नसों में खुशी दौड़ जाती है। एक साँभर दिखाई देता हैं। अँधेरे में उसकी आँखें तारों के समान तेज टिमटिमाती हैं। वह थोड़ी देर खड़ा रहता है, फिर पेड़ों के आकाश में छुप जाता है। हमारी वनयात्रा सफल होती है। हमारा रात्रि-विश्राम बाँधवगढ़ में हुआ। मेरी पलकों पर राम, सीता, लक्ष्मण के चित्र उभरते हैं और वे बाँधवगढ़ की सुषमा के बीच विचरण करने लगते हैं।

सुबह 23 सितंबर हो चुका है। वह बाँधवगढ़ की सुबह है। ओस से नहाई हुई सुबह है। विश्रामगृह के दालान में चाय की प्यालियों की भाप में घुल-मिलती सुबह है। कभी कोयल और कभी पपीहा की आवाज से जनकपुरी की पुष्पवाटिका की ऋतु को आमंत्रित करनेवाली सुबह है—'चातक कोकिल कीर चकोरा, कूजन विहग नटत कल मोरा।' यह सुबह राम के चरण-चिह्न की खोज की है। यह सुबह उस मार्ग की खोज की है, जिस पथ से राम बाँधवगढ़ होते हुए गए हैं। एक बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि राम का पथ नाक की सीध में नहीं रहा है। वे वन-प्रांतरों में घूमते-फिरते रहे हैं। ऋषियों के आश्रमों में गए हैं। रमणीय वनक्षेत्रों में रमे हैं। उन्हें जहाँ रुचिकर लगा वहाँ कुछ दिन वास किया है। बाँधवगढ़ लगभग 36 पहाड़ियों का अभयारण्य है। 448 वर्ग कि.मी में फैला राष्ट्रीय उद्यान है और 245 वर्ग कि.मी. में फैला-पनपता अभयारण्य है। इस प्रकार लगभग 993 वर्ग की.मी. में फैला बाँधवगढ़

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अभयारण्य है। इसमें साल, बाँस, साजा, महुआ, जामुन, हर्रा, बहेरा, आँवला, बीजा, बेल, तिनसा, पलाश, धोबिन, लेंडिया, शीशम आदि के पेड़ हैं। इनमें तेंदू, अचार और आँवला मुख्य हैं। आँवला यहाँ से ट्रकों में लदकर जाता है। शेर, तेंदुआ, हरिन, चीतल, साँभर, कोटरी, चौसिंगा, चिंकारा, नीलगाय, लोमड़ी, सियार, भेड़िया, लकड़बग्घा, जंगली कुत्ते इस अभयारण्य को जीवंत बनाए रखते हैं। सबसे पुरानी फसलें कोदों, कुटकी और मक्का है। फिर धान और अरहर आई। इस क्षेत्र में गेहूँ की फसल 8-10 साल से ज्यादा पुरानी नहीं है।

बाँधवगढ़ अभयारण्य में एक प्राकृतिक गुफा है। गुफा के पास से ही सुंदर झरना बहता है। इस गुफा को सीता मंडप कहते हैं। गुफा के अंदर पत्थर का चूल्हा बना हुआ है। किंवदंती यह है कि भगवान राम वन गमन के समय बाँधवगढ़ से गए हैं। वे यहाँ कई दिनों तक रुके। यह गुफा सीता रसोई के नाम से जानी जाती है। गुफा के पास ही एक प्राकृतिक कक्ष के आकार की गुफा है। वह राम-सीता की शयनकुटी रही है। उसके पास ही थोड़ी दूर पर विशाल चौकोर शिला है, उस पर बैठकर लक्ष्मण पहरेदारी करते रहे हैं। बाँधवगढ़ के किले में, जो एक सबसे ऊँची पहाड़ी पर बना हुआ है, एक राम मंदिर है। मंदिर में राम, सीता, लक्ष्मण की मूर्तियाँ हैं। मंदिर के सामने पहाड़ी पर एक विशाल तालाब है। बाँधवगढ़ में एक पहाड़ी पर शेषशायी की विराट प्रतिमा है। यह प्रतिमा पत्थर पर उकेरी है। यह प्रतिमा शेषनाग के अवतार लक्ष्मण की है, जो लेटी हुई अवस्था में है। यह भी कहा जाता है कि यह प्रतिमा शेषशायी विष्णु की है। यह 36 फीट लंबी प्रस्तर-प्रतिमा है। इस प्रतिमा के चरणों के पास से चरण-गंगा नाम की नदी निकली है। यह सारा क्षेत्र सघन वन से घिरा, पहाड़ियों के सौंदर्य से पटा हुआ एवं झरनों, नदियों, पक्षियों, वन्यप्राणियों से कूजित है। विश्वास होता है, राम यहाँ अवश्य-अवश्य बिरमे हैं।

बाँधवगढ़ (उमरिया) के विधायक नरेंद्र प्रताप सिंह ने अपने साक्षात्कार में कहा—"बाँधवगढ़ किले के चारों ओर गुफाओं का जाल बिछा है। बाँधवगढ़ अजेय दुर्ग रहा है। बाँधवगढ़ के बारे में किंवदंती है कि यह किला भगवान राम ने अपने बाँधव (बंधु) लक्ष्मण के लिए बनवाया था। बाँधवगढ़ से लंका के दीपक दिखाई देते थे। बाँधवगढ़ दुर्ग सबसे पहले गोंड राजाओं के पास था। फिर यह लोदी वंश, कल्चुरी वंश के राजाओं के पास से रीवा के राजा के पास रहा। वर्तमान में 36 पीढ़ियों से यह महाराजा रीवा के पास है। इस पर्वत से अभी भी गर्मियों में सतना सीमेंट फैक्ट्री की चिमनी दिखाई देती है। बाँधवगढ़ की पहाड़ियों में अनेक गुफाएँ हैं, जो लखबरिया कही जाती हैं। अनुमान है कि लखबरिया में एक लाख गुफाएँ हैं। एक शिलालेख में यह भी उल्लेख है कि इन गुफाओं का निर्माण राजाओं ने समय-समय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पर करवाया ताकि यहाँ पथिक विश्राम कर सकें। नरेंद्र प्रताप सिंह आगे कहते हैं कि भौगोलिक दृष्टि से देखें तो बाँधवगढ़ से अमरकंटक तक का भूभाग कभी समुद्र का हिस्सा रहा है। यहाँ फासिल्स मिले हैं। लकड़ी पत्थर हो गई है। शंख पत्थर बन गए हैं। जनश्रुति से भी इस भाग में समुद्र होने की बात पुष्ट होती है। नरेंद्र प्रताप सिंह एक रोचक बात कहते हैं–"बाँधवगढ़ में एक ऐसा पेड़ है जिसकी जड़ से प्रकाश फैलता है। यह एक प्रकार की घास है। इसे संजीवनी बूटी से कहीं न कहीं संबंधित किया जा सकता है। यहाँ एक चिरहुल नाम का पेड़ है, जिसकी छाल उबालकर अंग को सेंकने से गठिया बाय ठीक हो जाती है। यहाँ उड़नेवाला एक हरा साँप होता है, जो 10-20 फीट छलाँग लगाता है। विश्व में जितने साँप मिलते हैं उनकी 80 प्रतिशत प्रजातियाँ बाँधवगढ़ में पाई जाती हैं।"

बाँधवगढ़ (उमरिया) के अजय प्रताप सिंह जानकारी देते हैं कि भगवान श्रीराम के चित्रकूट से प्रस्थान के बाद यही एक सुगम मार्ग है जिससे वे बाँधवगढ़ आए हैं। मार्कंडेय आश्रम महानदी और सोनभद्र के संगम पर है। इस क्षेत्र की सोन और जोहिला बड़ी नदियाँ हैं, जो अमरकंटक से ही निकलती हैं। इन नदियों को यहाँ से सुगमता से पैदल पार किया जा सकता है। राम ने नर्मदा को कहीं पार नहीं किया, अतः वे अमरकंटक नहीं गए। बाँधवगढ़ के बाद जोहिला और सोनभद्र को पार कर श्रीराम जनकपुर, सीतापुर होते हुए अंबिकापुर के रामगिरि पर्वत चले गए। रामगिरि पर्वत में तो स्पष्ट है कि वहाँ सीता बैंगरा (गुफा), लक्ष्मण बैंगरा हैं। उनमें शैलचित्र हैं। बाँधवगढ़ किले में राम मंदिर है; यहाँ की जनजातियों के गीतों, नृत्यों और कलाओं में राम से संबंधित संदर्भ मिलते हैं। इससे स्पष्ट प्रमाण है कि राम यहाँ आए हैं। यहाँ की तराई में पशु-पक्षियों की अनेक प्रजातियाँ हैं, जिनका वर्णन प्राचीन ग्रंथों में है। उनके चित्र गुफाओं में बने हुए हैं। यहाँ के लोकजीवन में रामकथा के अनेक प्रमाण एवं संकेत मिलते हैं।

राम का वन गमन मार्ग बाँधवगढ़ से ही रहा है, इसका एक प्रमाण वाल्मीकि रामायण में वर्णित प्राकृतिक स्थिति से भी प्राप्त किया जा सकता है। अरण्य कांड में उल्लेख है कि श्रीराम ने वहाँ मार्ग में नीवार, कटहल, साखू, अशोक, तिनिश, चिरिबिल्व, महुआ, बेल, तेंदू तथा और भी सैकड़ों जंगली वृक्ष देखे। उनमें से कई वृक्षों को हाथियों ने अपनी सूँड से मसलकर तोड़ डाला था। बाँधवगढ़ में हाथी हैं, तथा वे वृक्ष हैं जिनका वर्णन किया गया है। अतः यह तय है कि राम वन गमन मार्ग में बाँधवगढ़ राम की यात्रा का पड़ाव रहा है। राम कुछ दिन यहाँ रहे हैं।

दिनांक 23.09.01 को दोपहर एक बजे बाँधवगढ़ से उमरिया होते हुए शहडोल के लिए चलते हैं। सड़क बहुत खराब है। कहीं-कहीं तो सड़क है ही नहीं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

धूल और धूप से स्नान कई-कई बार करना पड़ रहा है। धान के खेतों को
Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
देखकर धूल का क्लेश मिट जाता है। रास्ते में बुढ़ार नामक कस्बा पड़ता है। कटनी-बिलासपुर रेलमार्ग के समानांतर सड़कमार्ग से चलते हुए आगे बढ़ते हैं। महानदी को देखकर एवं पार कर मन प्रसन्न हो गया। महानदी यहाँ कठोर चट्टानों की सँकरी गली से होकर बहती है। बीरसिंहपुर पाली से होते हुए आगे बढ़ते हैं तो जोहिला नदी मिलती है। जोहिला को देखकर नर्मदा और शोणभद्र की प्रणय-कथा याद आ गई। लगभग तीन बजे हम शहडोल पहुँचते हैं। वहाँ विश्रामगृह में चाय पीकर अमरकंटक के लिए चल देते हैं। शहडोल में ही अमरकंटक के रास्ते में डॉ. दिलीप द्विवेदी प्राध्यापक के घर गए, वे प्रो. अवधेश प्रसाद पांडे के कृपापात्र हैं। उनकी विनम्रता और अतिथि-सत्कार प्रशंसनीय और अनुकरणीय है। वहाँ से लगभग पाँच बजे अमरकंटक के लिए चलते हैं। आगे खुली कोयला-खदानें देखकर उत्सुकता जागी। दायीं ओर दक्षिण में विंध्याचल की ऊँची श्रेणियाँ मन को खींचती हैं। एक पर्वतश्रेणी सबसे ऊँची दिखाई देती है। वही किरर पर्वत है।

किरर पर्वत को पार करने हेतु हमारी जीप घुमावदार रास्ते पर भागी जा रही है। कुआर का महीना है। शरद ऋतु का चंद्रमा आकाश में चमक रहा है। मानो वनवासी आकाश ने कंदील जला दी हो। सरई के ऊँचे-ऊँचे पेड़ शाम के घिरते अँधेरे को और साँवला बना रहे हैं। वनवासियों का आना-जाना लगातार है। पहाड़ चढ़कर मैदानी भाग में आ जाते हैं। राजेंद्रनगर पहुँचते हैं। लगभग नौ बजे अमरकंटक पहुँचते हैं। विश्राम भवन में आवास व्यवस्था है। नीचे उतरकर एक झोपड़ीनुमा होटल में भोजन करते हैं। वापस विश्राम भवन में जाते हैं। विश्राम भवन पहाड़ी पर है। रात के ग्यारह बजे हैं। चंद्रमा डूब गया है। आकाश की कंदील बुझ गई है। अमरकंटक की पहाड़ियाँ शांत हैं। आकाश तारों से भरा है; जैसे मोतियों से भरा थाल औंधा पड़ा हो। या फूलों से भरी विशाल झबरिया को उलट दिया हो। धरती-आकाश के बीच केवल सन्नाटा है। जाग रहे हैं तो आकाश के तारे और धरती के दीपक। कोई पक्षी, कोई पशु की आवाज भी सुनाई नहीं दे रही है। विश्रामगृह के बगीचे के कोने में रातरानी महक रही है। मेरे मन में माँ नर्मदा के प्रति श्रद्धा की सुवास फूटने लगी है। नींद की पदचाप मुझे साफ सुनाई देती है। परंतु अमरकंटक की पहाड़ियों पर दूर-दूर तक मेरे राम, सीता, लक्ष्मण की पगध्वनि सुनाई नहीं देती है। मैं अमरकंटक के शिखर से देखता हूँ कि मेरे राम आम्रकूट पर्वत के उत्तरी भाग के किनारे-किनारे सरगुजा के रामगढ़ की ओर चले जा रहे हैं।

24 सितंबर की सुबह होती है। यह प्रातः बेला है। श्रद्धा कहती है कि सूर्योदय के पूर्व नर्मदाकुंड में डुबकी लगाना है। भुवन भास्कर प्राची के आँगन में प्रवेश करें,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
उसके पहले ही हम नर्मदा कुंड की ओर लपकते हैं। कुंड में मैं पूरी आस्था और श्रद्धा से डुबकी लगाता हूँ। जल से शरीर भींगता है, नयन-स्रोत से मन भी भींग जाता है। प्रो. पांडे कहते हैं—"डॉ. परिहार, शरीर को कपड़े से मत पोंछना, नर्मदा जल को रोम-रोम में रँजने दो।" मैं वैसा ही करता हूँ। मैं आनंदित हूँ कि यह यात्रा चित्रकूट से आम्रकूट तक की संपन्न हुई। यह यात्रा मंदाकिनी से नर्मदा तक की सफल हुई। मंदाकिनी के जल से लिया संकल्प नर्मदा-जल के आचमन के साथ पूर्ण हुआ। हमारी यात्रा पर्वत से पर्वत और नदी से नदी तक की ही है। राम की यात्रा का सौंदर्य भी इन्हीं से है और हमारे जीवन की यात्रा की पूरकता और पूर्णता भी प्रकृति से है। इसलिए पर्वत के पास आकर हम पिता का वात्सल्य और नदी के पास माँ का ममत्व पाते हैं। नर्मदा तो साक्षात माँ है।

दिन काफी चढ़ आया है। हम सोनमुड़ा के दर्शनार्थ जाते हैं। सोनभद्र के उद्गम स्थल का सौंदर्य आँखों में रम जाता है। सोनभद्र नद है। भारतीय संस्कृति ने ब्रह्मपुत्र, सिंधु और सोन को नद कहा है। सोन अपने उद्गम के पास ही सैकड़ों फीट की ऊँचाई से गिरता है और पूर्व की ओर चला जाता है। आगे इसमें महानदी और जोहिला मिलती है। यह उत्तर-पूर्व में बहता हुआ बिहार में गंगा में मिल जाता है। इसके मिलने के बाद ही गंगा विराट हो जाती है। सोनमुड़ा से माई की बगिया पहुँचते हैं। गुलबकावली के पौधे लहलहाते हैं। नेत्रों में डालने की औषधि इसी पौधे से बनती है। अमरकंटक जड़ी-बूटियों का भंडार हैं। सोन और नर्मदा का जल औषधियुक्त है। इसलिए जो गुण माँ के दूध में हैं, वहीं गुण माँ नर्मदा के जल में हैं।

लगभग 10 बजे हमारा दल श्री यंत्र महामेरु पीठाधीश्वर महाशक्ति मंडलाचार्य तंत्रयोगज्योतिषाचार्य श्री स्वामी शुकदेवानंद जी महाराज के आश्रम में पहुँचता हैं। वे अपने कक्ष में अकेले चिंतनलीन दिखे। उनसे बातचीत की तो लगा ज्ञान, अनुभव और जानकारियों का स्रोत बह निकला हो। उनके श्रीमुख से जैसे शब्द-निर्झरिणी बह निकली हो। उनसे अमरकंटक और दंडकारण्य के विषय में सर्वथा नवीन और महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। वे कहते हैं—"अमरकंटक और दंडकारण्य में बैगा जनजाति रहती है। बैगा जनजाति सुखेन वैद्य से संबंधित है। सुखेन वैद्य रावण का पुत्र था। वैद्य पर वार नहीं किया जाता, इसलिए राम-रावण युद्ध में उसे नहीं मारा गया। ये बैगा जाति उसी सुखेन वैद्य की संतान है। 'वैद्य' से 'वैद्या' और 'बैगा' हो गया। ये दूल्हा देव की पूजा करते हैं। दूल्हा देव रावण ही है। ये बड़ा देव (महादेव), काली और नकटी देवी (शूर्पणखा) की भी पूजा करते हैं। नकटी देवी इस क्षेत्र की प्रशासक थी। चित्रकूट के दक्षिण में एक योजन से और छोटी महानदी और सोन के संगमस्थल से दंडकारण्य शुरू हो जाता है। दंडकारण्य कूर्म पर्वत तक फैला है। कूर्म

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पर्वत पंचवटी (नासिक) के पास है। नर्मदा के उत्तर में विंध्य और नर्मदा के पूर्व में मेकल पर्वत है। मेकल पर्वत भारत में मेखला की तरह फैला है। मेकल पर्वत सतपुड़ा और विंध्य को जोड़ता है।

अमरकंटक से पूर्व में 60 कि.मी. दूर 'मरवाही' नामक स्थल पर एक विशाल गुफा है। मरवाही शूर्पणखा की गतिविधियों का केंद्र रहा है। वहाँ 12-12 फुट लंबे चिलम रखे हुए हैं। ये मिट्टी के बने हैं। अमरकंटक से पेंड्रा होते हुए मरवाही को जाया जा सकता है। यहाँ 1762 का जीरो पाईंट गड़ा है। यह एक विशाल पिलर है, जिस पर 'जीरो पाईंट ऑफ इंडिया' लिखा है। अमरकंटक तक शूर्पणखा का राज्या रहा है। बैगा का दूसरा नाम 'देवारि' है। देवअअरि का अर्थ है—देवों के शत्रु। अतः यह जाति राक्षसों के वंशानुक्रम की है। स्पष्ट है कि यह पूरा क्षेत्र रावण के प्रतिनिधियों के आधिपत्य में रहा है। बैगा भाषा में 70 प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं। इस जाति के लोगों के रावण, मेघनाद नाम भी मिलते हैं। इस जाति की परंपराएँ वे हैं जो रावण के राजवंश में प्रचलित रही हैं। ये मणि मंत्र पद्धति से चिकित्सा करते है। बैगा शिखा रखते हैं। विभीषण के राजा बनने के बाद समस्त बैगा जाति राम की शरण हो गई तथा राम की अनुयायी हो गई है। अब बैगा जाति के लोग आपस में अभिवादन करते समय 'माजी राम राम' कहते हैं, जिसका अर्थ है—'हे आत्मन् ! राम राम।'

कंब रामायण में प्रसंग आया है कि रावण ने शूर्पणखा से मुँह काला किया था, हालाँकि यह धोखे में हुआ था। उसी समय शूर्पणखा का पति विद्युतजिह्वा आ जाता है। रावण और उसका युद्ध होता है। विद्युतजिह्वा मारा जाता है। उसके बाद रावण अपनी बहन शूर्पणखा को दंडकारण्य की अधिष्ठात्री बना देता है। शूर्पणखा के अधीनस्थ खर और दूषण थे। खर-दूषण का प्रभाव खरसिया (रायगढ़) से लेकर खरगोन तक रहा है। कोतमा से 30 कि.मी आगे पूर्व में चरणगंगा नदी के तट पर एक शिला पर उभरा हुआ चरण है। मान्यता है कि यह चरण राम का है। पूरे बाँधवगढ़, शहडोल, शरगुजा, रायगढ़, बिलासपुर, रायपुर, बस्तर में राम का इतना प्रभाव है कि प्रायः प्रत्येक गाँव का नाम राम, सीता, लक्ष्मण से जुड़ा हुआ है। रामपुर, श्रीरामपुर, सीतापुर, जनकपुर, लखनपुर, लखनगढ़ आदि नाम आम हैं। इसी तरह व्यक्तियों के नाम, पहाड़ों के नाम, झरनों के नाम भी मिलते हैं। यहाँ कई रामझरना, रामझरा, रामझिरी हैं। अमरकंटक के नजदीक न जाने कौन-सी धातु से बनी एक कुटिया है, उसके पास एक सुंदर झरना है। इस कुटिया को सीता रसोई कहते हैं। अमररकंटक से 40 कि.मी दूर हजारी दादर और वहाँ से 10 कि.मी दूर गीधा दादर है, उसी के पास सीता रसोई है। सरगुजा के रामगिरि से राम ने महानदी के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उद्गम के पास से दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। वहाँ से राम अगस्त्य ऋषि के आश्रम गए। अगस्त्य ऋषि का आश्रम भद्राचल पर्वत के पास है। भद्राचल पर्वत बस्तर और आंध्र प्रदेश की सीमा पर है। वहाँ से राम अगस्त्य मुनि के बताए हुए अनुसार पश्चिम की ओर जाकर गोदावरी नदी के तट पर पंचवटी पहुँचते हैं।

तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि राम बाँधवगढ़ से दक्षिण-पूर्व में अमरकंटक की तराई में रमते-बिरमते हैं। खर-दूषण-त्रिसिटा से उनकी मुठभेड़ इसी क्षेत्र में हुई और संपूर्ण दंडकारण्य को उन्होंने पग-पग जोहा है। चित्रकूट से अत्रि आश्रम, शरभंग आश्रम, सुतीक्ष्ण आश्रम, अग्निजिह्वा आश्रम, भरहुत, बाँधवगढ़, मार्कंडेय आश्रम, रामगिरि (सरगुजा) शिबरीनारायण, अगस्त्य आश्रम होते हुए राम पंचवटी पहुँचे।

हम कपिल धारा में नर्मदा के दर्शन करते हैं। यहाँ नर्मदा छोटी-सी, पतली-सी धारा है। यही नर्मदा ओंकारेश्वर, महेश्वर, भडौंच और मीठीतलाई में विराट हो जाती है। हम नर्मदा की विराटता और राम की सर्वव्यापकता को प्रणाम करते हैं। हमारी शोध-यात्रा यहीं समाप्त हो जाती है। राम का पथ मेरी स्मृतियों में उभर कर अमिट हो जाता है।

□□□

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Gran

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial Colleg mmu

डॉ. श्रीराम परिहार

जन्म : 16 जनवरी, 1952, खण्डवा (म.प्र.)

शिक्षा : एम.ए. पी-एच.डी.

कृतियाँ : आँच अलाव की : 1989, अँधेरे में उम्मीद : 1994, धूप का अवसाद : 1998, बजे तो वंशी–गूँजे तो शंख : 1999, ठिठके पल पाँखुरी पर : 2000, रसवंती बोले तो : 2002, चौकस रहना है, रचनात्मकता और उत्तर परम्परा : 2000

पुरस्कार : 'अँधेरे में उम्मीद' पर 'वागीश्वरी' पुरस्कार'। छत्तीसगढ़ राज्य साहित्य अकादमी द्वारा ललित निबन्ध पर 'सृजन सम्मान'। अभिनव कला परिषद्, भोपाल द्वारा 'श्रेष्ठ कला आचार्य सम्मान'। 'धूप का अवसाद' पर 'निर्मल पुरस्कार'।

संपादन : पत्रिका 'अक्षत' का सम्पादन।

निवास : 16, आजाद नगर, खण्डवा (म.प्र.)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation

ISBN : 81-8187-135-9

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आलेख प्रकाशन

वी-8, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

दूरभाष : 011-22321582-83

ई-पता : alekhprakashan@gmail.com

वेब पता : alekhprakashan.com

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant